• वर्ष ६६ • अंक ११ • मूल्य ₹२०

जून (प्रथम) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

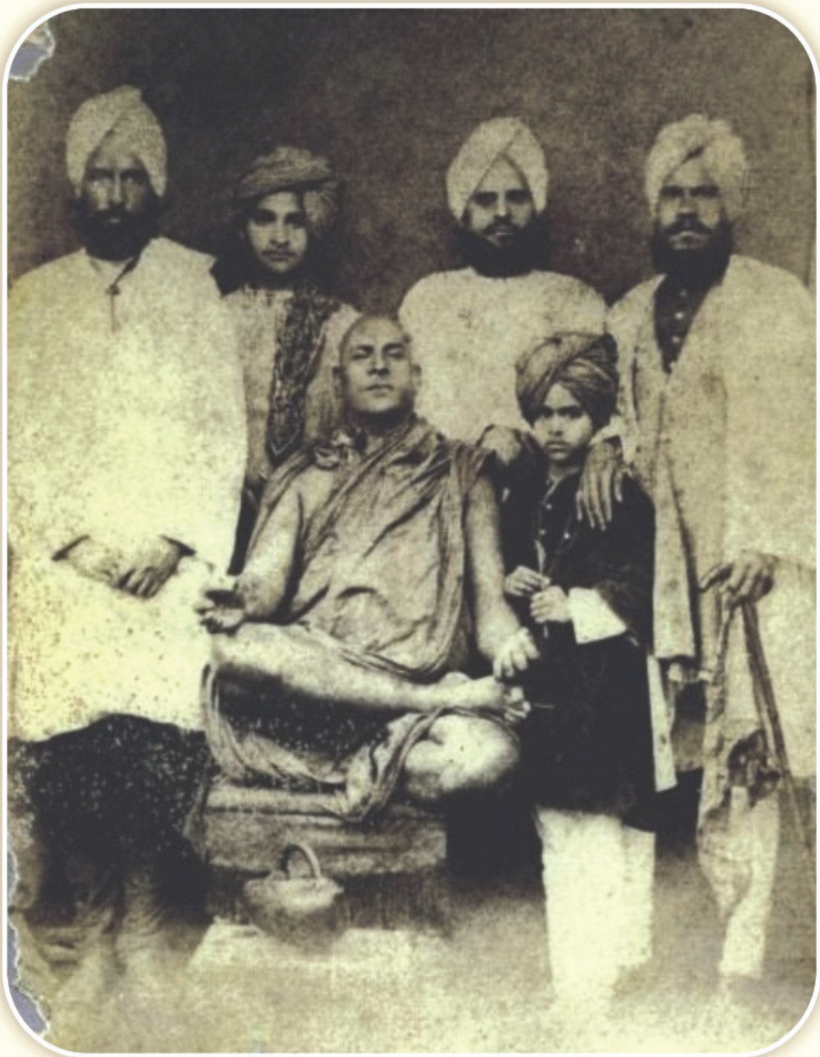

१८ अगस्त १८७७ को गुरदासपुर (पंजाब) में लिया गया चित्र।

स्वामी दयानन्द सरस्वती (आसनस्थ) एवं अन्य

उद्योगपति श्री एस के आर्य के साथ परोपकारिणी सभा के प्रधान श्री ओम्मुनि, उप प्रधान न्यायमूर्ति श्री सज्जन सिंह कोठारी, मंत्री श्री कन्हैयालाल आर्य और आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के महामंत्री श्री विनय आर्य। सभा के पदाधिकारियों के आग्रह पर श्री एस के आर्य जी ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के द्वि जन्म शताब्दी समारोह अजमेर का स्वागताध्यक्ष बनना स्वीकार कर लिया।

परोपकारिणी सभा के न्यासी आचार्य ओम्प्रकाश जी की संन्यास दीक्षा के अवसर पर सभा की ओर से प्रधान श्री ओम्मुनि, मंत्री श्री कन्हैयालाल आर्य और पुस्तकालयाध्यक्ष आचार्य विरजानन्द दैवकरणि ने उन्हें गेरुआ वस्त्र भेंट किए। संन्यास दीक्षा के बाद उन्हें स्वामी ओमानन्द सरस्वती नाम मिला।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।*

वर्ष : ६६ अंक : ११

दयानन्दाब्द: २००

विक्रम संवत् - ज्येष्ठ कृष्ण २०८१

कलि संवत् - ५१२५

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२५

▪

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

▪

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,

केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

०८८९०३१६९६१

▪

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

▪

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जूना प्रथम, २०२४

अनुक्रम

०१. महर्षि दयानन्द और उनका दाय	सम्पादकीय	०४
०२. भाग्यधन-भोग्यधन और...	प्रो. नरेश कुमार धीमान्	०६
०३. मैं आजन्म जिनका ऋणी रहूँगा-२	प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. हम वेद धर्म के अपराधी	आ. रामनिवास गुणग्राहक	१५
०५. निवेदन		१९
०६. मूर्ति-पूजा ने क्या किया?	श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	२०
०७. ज्ञान सूक्त-१४	डॉ. धर्मवीर	२१
०८. ऋषि दयानन्द की प्रथम जन्म...	डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री	२५
०९. सब का हो उत्थान	डॉ. रामवीर	२८
१०. योग-ध्यान स्वाध्याय शिविर		२९
११. आर्यवीर एवं आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर		३०
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३१
१२.संस्था की ओर से....		३२
* प्रवेश सूचना		३३
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

महर्षि दयानन्द और उनका दाय

मनीषियों ने संसार को कर्मक्षेत्र कहा है और इसमें आने-जाने वाले जीवों को कर्म, भोग तथा उभययोनि अथवा उभयदेह कहा है। जहां बहुत सारे जीव अपने पूर्व कर्मों का फल भोगने के लिए कृमि-कीट-पतंग आदि योनियों में आते हैं, वहीं कुछ जीव अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोगने के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक कर्म करने के अधिकार से युक्त मनुष्य देह को धारण करते हैं।

सामान्यतः मनुष्य योनि को प्राप्त कर स्व-स्व रुचि के अनुसार कर्म करते हुए सांसारिक पदार्थों का विस्तार करने के साथ परिवार का भी विस्तार करते हैं। इस प्रकार के मनुष्यों की विरासत अथवा दाय को उनके उत्तराधिकारी वंशज प्राप्त करते हैं। उनकी अपूर्ण इच्छाओं तथा उनकी भावनाओं की पूर्ति का दायित्व भी उनके वंशजों का ही होता है, किन्तु संसार में विरले ही इस प्रकार के होते हैं, जिनके कर्म आत्मकेन्द्रित, स्ववंश विस्तारक न होकर संसार के हितार्थ होते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति भौतिक संसाधनों के साथ स्व परिवार आदि का हित छोड़ प्राणी मात्र के कल्याण का चिन्तन करते हैं, उनकी समग्र चेष्टाएं और कार्यकलाप परहितपरक होते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों का दाय अथवा विरासत वैचारिक होती है। भौतिक दाय के प्राप्ति-संरक्षण की अपेक्षा वैचारिक दाय का संरक्षण-संवर्धन कठिन होते हुए भी संसार के कल्याण का निमित्त बनता है। **अतः भौतिक दाय की अपेक्षा वैचारिक दाय अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।**

विश्व के सभी देशों में समय-समय पर इस प्रकार के मानवों का आविर्भाव होता रहता है। इन्हें ही महापुरुष-युगपुरुष-युगप्रवर्तक की संज्ञा से अभिहित किया जाता रहा है। श्रद्धातिरेक में इन्हें पैगम्बर, अवतार तक कह दिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों के मत में वैयक्तिक अवचेतन के सदृश ही सामाजिक अवचेतन भी होता है और उसी अवचेतन में ऐसे महापुरुषों के प्रति आर्कीटाइप्स हो जाने के कारण इन्हें इनके बचपन की घटनाओं के कारण 'मिरेकुलस चाइल्ड' युवावस्था में किए बल प्रधान कर्मों के आधार पर 'हीरो सेवियर' तथा कठिन से कठिन समस्याओं के समाधाता होने के कारण 'वाइज ओल्डमैन' कहा जाता है। धार्मिक जगत् में तो ये-ईशपुत्र, ईशदूत तथा अवतार के आसन पर विराजित दिखते हैं।

उन्नीसवीं सदी का भारत धार्मिक दृष्टि से स्वारस्य-समरसता पूर्ण नहीं था। वैदिक संस्कृति के ह्रासोन्मुख होने के कारण धार्मिक समभाव बहुविध विसंगतिपूर्ण हो गया था। धार्मिक जगत् का महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है- ईश्वर। इसे जगत् स्रष्टा, जगत् पालक और जगन्नियन्ता माना जाता है। अज्ञान के प्रसार के कारण एक ईश्वर के स्थान पर उसके कार्य के आधार पर अनेकत्व की कल्पना प्रसृत हुई और उसके नाम तथा कार्य भेद हो गया। इसी का विकृत रूप विविध सम्प्रदाय के रूप में समाज में बद्धमूल होकर फैलता रहा। सभी की उपासना पद्धति की भिन्नता के कारण उपासना के बाह्य चिह्न, पूजा सामग्री, प्रकार, तिलक आदि का भेद बढ़कर सामाजिक कलह का कारण हो चुका था। वैदिक धर्म हिन्दू धर्म के रूप में नामान्तरित होकर-शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य आदि विभागों में विभक्त होकर पारस्परिक कलह-द्वेषयुक्त हो चुका था। पुराणों में इस प्रकार के सन्दर्भ उपलब्ध हैं, जिनमें शैव और वैष्णव परस्पर एक-दूसरे को अस्पृश्य तक कहने लगे थे। सामाजिक ढांचा जातियों में विभक्त हो ऊंच-नीच, छुआ-छूत का शिकार हो गया। मनुष्य-मनुष्य की परछाईं मात्र से अपवित्र होना सम्भव था।

इस प्रकार की विषम परिस्थिति में महर्षि का आगमन हुआ। महर्षि ने धार्मिक कुरीतियों तथा ईश्वर विषयक अज्ञान के विरुद्ध तुमुल घोष किया। ईश्वर के भेद तथा तदाश्रित उपासना पद्धतियों के भेद, बाह्य चिह्नों सहित की तार्किक समीक्षा की। यह इतनी सशक्त थी कि

तत्कालीन समाज ने इसे खण्डन तक की संज्ञा प्रदान की। किन्तु इसी का सुफल है कि आज हिन्दुओं में उपासना भेद के आधार पर माना जाने वाला भेद कहीं दिखाई नहीं देता। साथ ही शैव-वैष्णव-शाक्त की कम से कम यह दृष्टि/मान्यता तो बनी कि ये सब उसी एक सत्ता के वाचक हैं। इस सामंजस्य के मूल में कहीं न कहीं महर्षि के वह विचार हैं, जो 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम समुल्लास में उपलब्ध हैं। वहाँ ईश्वर के विभिन्न नामों की ईश्वर के गुणपरक व्याख्या की गई है। **वहाँ शिव, विष्णु, गणेश, रुद्र आदि शताधिक नाम (ईश्वर के गुणों/विशेषणों पर आधृत होने के कारण) उसी 'ओ३म्' पदवाच्य ईश्वर के वाचक हैं। धार्मिक दृष्टि से महर्षि का यह महत्त्वपूर्ण दाय है, जो अपनी समग्रता के साथ सभी मत-पन्थों में समरसता स्थापन में सहयोगी भी हो सकता है।** लार्ड लिटन के दिल्ली दरबार के समय महर्षि द्वारा विविध पन्थों के अग्रणी पुरुषों को धार्मिक एकता की दृष्टि से निमन्त्रित किया गया था। इस धर्म सम्मेलन में- मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, केशवचन्द्र सेन, सर सैयद अहमद खाँ आदि सम्मिलित हुए। मेला चांदापुर (शाहजहांपुर, उ.प्र.) आदि के शास्त्रार्थ भी महर्षि का वह महत्त्वपूर्ण दाय है जो सौहार्दपूर्ण ढंग से धार्मिक ऐक्य के लिए किए गए थे।

मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना (अप्रैल, सन् १८७५ ई.) के पश्चात् महर्षि ने (जून-जुलाई, सन् १८७५) पूना में अनेक व्याख्यान दिए थे। इनमें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है उस समय के अतिपिछड़ों के निवेदन पर शूद्रातिशूद्रों की पाठशाला (यह पाठशाला प्रसिद्ध समाजसुधारक महात्मा ज्योतिबा फुले द्वारा स्थापित की गई थी) में १६ जुलाई १८७५ ई. को वेद का उपदेश उन लोगों (जिन्होंने स्वयं को महार, चांभार आदि लिखा था।) के मध्य प्रदान किया। तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं के अनुसार इस वर्ग को वेद पढ़ना तो दूर सुनने का भी अधिकार नहीं था।

यद्यपि कोई इस घटना को सामान्य घटना कह सकता है, किन्तु उस समय कोई वेदविद् उन्हें वेदोपदेश नहीं कर सकता था। इस घटना के प्रभाव को वर्तमान की एक घटना के साथ मिलाकर देखें, तो इसका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है-

अभी २८ अप्रैल २०२४ को एक महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई है। **तथाकथित अनुसूचित जाति में जन्म लेने वाले स्वामी महेन्द्रानन्द गिरि को प्रयागराज के मौजगिरि आश्रम में कर्मकाण्डपूर्वक जगद्गुरु की पदवी प्रदान की गई है। इस अवसर पर जूना अखाड़ा के अन्तर्राष्ट्रीय सभापति श्री महंत प्रेमगिरि तथा काशी सुमेरु पीठाधीश्वर जगद्गुरु स्वामी नरेन्द्रगिरि ने माल्यार्पण कर महेन्द्रानन्द गिरि को आसन ग्रहण कराया।**

क्या अब से डेढ़ शताब्दी पूर्व इस दृश्य की कल्पना की जा सकती थी? महर्षि द्वारा स्त्री-शूद्र सभी को समान वेदाधिकार देने, आर्यसमाज द्वारा संचालित गुरुकुलों में सभी को बिना जातीय भेदभाव के वेदाध्ययन कराने आदि की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रही है। **परछाईं तक से डरने वाला समाज आज महामण्डलेश्वर और जगद्गुरु की पदवी प्रदान करने तक पहुँचा है-यह शुभ लक्षण है, किन्तु इसके पीछे महर्षि की वह विरासत/दाय जिसके संरक्षण-संवर्धन के लिए महर्षि भक्तों ने सामाजिक बहिष्कार तक झेला वह पहली चोट की तरह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।**

धार्मिक क्षेत्र में अभी भी उस विरासत/दाय को विस्तारित करने की आवश्यकता है, जिससे धर्म का निर्मल रूप स्थापित हो और परिणामस्वरूप प्राणीमात्र सुखी हो। महर्षि का दाय केवल धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। अन्य क्षेत्र से सम्बन्धित महर्षि दाय यथा अवसर विवेच्य हैं।

डॉ. वेदपाल

भाग्यधन-भोग्यधन और धरोहरधन

**[प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी)
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]**

**नरेषु धनस्वामित्वं नित्यं हि परिवर्तते।
यथा छाया तु मेघस्य तथा मैत्री धनस्य च॥
धने स्वत्वं न कस्यापि सर्वमीशस्य तत्त्वतः।
तृष्णायाश्च नोपायो ह्यगृध्रः सन् सुखी भवेः॥
स्वश्रमेणार्जितं द्रव्यं स्वद्रव्यं व्यवहारतः।
अन्येनोपार्जितं द्रव्यम्-अन्यस्यैव न ते च तत्॥
स्वस्यैव संग्रहो भोगः तदपि नातितृष्णया।
परधने च गृध्रत्वं 'मा गृधः कस्यस्वित् धनम्'॥**

(ईशावास्यबोधामृतम्)

मनुष्यों में धन का स्वामित्व नित्य बदलता रहता है। वास्तव में धन के साथ मनुष्य की मित्रता बादलों की छाया की तरह पल-पल बदलने वाली होती है। धन में किसका स्वामित्व हो सकता है? किसी का भी नहीं, क्योंकि तत्त्व रूप में सारा धन तो उस परमेश्वर का ही है, फिर तृष्णा का कोई उपाय नहीं। इसीलिए हे मानव! तू गीध-की-सी दृष्टि न रखते हुए, लालच न करते हुए सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर।

व्यवहार में अपनी मेहनत से कमाया हुआ धन मनुष्य का अपना धन कहलाता है और किसी दूसरे के द्वारा अपनी मेहनत से कमाया हुआ धन उसका अपना धन होता है, तुम्हारा नहीं। व्यवहार रूप में अपना कहा जाने वाले धन का ही संग्रह और भोग मनुष्य को करना चाहिए। परन्तु संग्रह और भोग दोनों में ही अतितृष्णा नहीं बर्तनी चाहिए। क्योंकि ईशावास्य उपनिषद् स्पष्ट रूप से कह रहा है— **'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्'** - लालच मत कर, न अपने धन का न किसी दूसरे के धन का। क्योंकि आखिर यह धन किसका है ? उस सुखस्वरूप परमेश्वर का ही तो है।

जब सारा जगत् ईशावास्य है, परमेश्वर का घर है, तो सारे धन का वास्तविक स्वामी भी परमेश्वर ही है। परन्तु परमात्मा का मनुष्यों के लिए आदेश है- 'भुञ्जीथाः' भोग करो। साथ ही कह दिया — **'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्'** — 'किसी के धन का लालच मत रखो'। फिर परमात्मा के ही धन का लालच क्यों किया जाए?

जीवात्मा से परमात्मा की सत्ता अलग है, वह जीव की अपेक्षा दूसरा है। परन्तु परमात्मा स्वयं कह रहे हैं — 'ए जीव ! भोग कर'। ऐसी दशा में सोचना पड़ेगा, सीमा निश्चित करनी पड़ेगी कि इस अनन्त जगत् में, इन अनन्त जीवों के धन की सीमा क्या है? व्यवहार रूप में मनुष्य का अपना धन कौन सा हो सकता है? जिसके भोग का आदेश उसे दिया गया है।

इसी उपनिषद् के दूसरे मन्त्र में कहा गया है—
'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः'

कर्म करते हुए ही मनुष्य को सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। इस मन्त्र में पढ़ा गया **'एव'**

पद ही मनुष्य के धन की सीमा निश्चित करता है। '**इह कर्माणि कुर्वन् एव**' अर्थात् इस मनुष्य देह में कर्म करता हुआ ही। '**कर्म करता हुआ ही**' — इस वाक्यांश से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि कर्म करने के फलस्वरूप — श्रम करने के बाद — अपनी मेहनत से कमाने पर मनुष्य को जो धन मिले, व्यवहार रूप में वह धन ही उस कर्म/श्रम करने वाले का अपना धन कहलाएगा। यही मनुष्य के अपने अधिकार का , हक का धन है। यही वह सीमा है, जिस सीमा तक के धन पर वह अपना हक प्रकट कर सकता है और भोग सकता है।

सांसारिक जीवन यात्रा, सामाजिक जीवन की परिपालना, गृहस्थ जीवन का निर्वाह बिना धन के नहीं हो सकता। धन का संग्रह भी आवश्यक है, संग्रहित की रक्षा भी जरूरी है और तत्त्व रूप में सारा धन भी ईश्वर का है। उसमें से अपनी मेहनत का धन ही मनुष्य का अपना धन है, वह भी कहने मात्र के लिए है, व्यवहार के लिए। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए '**मा गृधः कस्य स्विद्धनम्**' की मनुष्य जीवन में क्या संगति हो सकती है?

मन्त्रभाग का तात्पर्य है— किसी के भी धन का लालच मत करो। दूसरे शब्दों में किसी दूसरे के अधिकार का , किसी दूसरे के हक का जो धन है उसका लालच मत करो। केवल अपने ही हक का धन लेना है, किसी दूसरे के हक का नहीं। दूसरे का हक न तो छीन कर लिया जाए और न ही चुपके से — मन्त्र में दोनों का ही निषेध है।

'**मा गृधः**' — गीध-की-सी दृष्टि मत रखो, अतितृष्णा मत करो। गीध एक मांसभक्षी पक्षी है, जो उड़ता आकाश में है, दूर ऊँचाई पर, परन्तु उसकी दृष्टि रहती है धरती पर पड़े मांस के लोथड़े पर। श्रुति का आदेश है — धन के प्रति गीध-दृष्टि मत अपनाओ। ऐसा विचार मत रखो कि संसार का सारा ज्ञान-विज्ञान, मनुष्य की सारी बुद्धि और प्रयत्न, सब कुछ केवल धन पाने के लिए हैं। अपने श्रम के धन में अपने अधिकार के धन में सन्तुष्ट रहो। जो तुम्हारे हक का धन है, उसका भी सन्तोष पूर्वक उपभोग करो, गीध की भाँति मत बनो। लालच मत करो, क्योंकि वास्तव में तो इस सारे धन का स्वामी तो वह सुखस्वरूप ही है। अतः लालच कैसा?

व्यवहार रूप में अपना कहे जाने वाला धन भी दो हिस्सों में बँटा है — भोग्य धन और धरोहर धन। इस विषय का विवेचन 'ईशावास्यबोधामृतम्' में मिलता है।

स्वश्रमेणार्जितं द्रव्यं यद्यपि भोगसाधनम्।
तत्र जानीत भागौ द्वौ भोग्यभागो धरोहरः॥
भोग्यभागात् स्वयं भुङ्क्ते न्यासाद् दानादिकं तथा।
कुरुते न्यासभागाद् वै कुटुम्ब-परिपालनम्॥
'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' 'मा गृधः कस्यस्वित् धनम्'।
त्यजन् न्यासं हि भुञ्जीथाः-बोधार्थो वाक्ययोर् द्वयोः॥
भोगस्यापि न सर्वांशः एकजन्मनि भुञ्ज्यते।
भाग्यैः पूर्वार्जितैः सार्धं भोग्यं भुङ्क्ते व्यवस्थया॥
क्वचिन् न्यासः क्वचिद् भोग्यः क्वचिद् भाग्यः तथैव च।
कर्म-व्यवस्थया लोके न्यूनो वा वर्ततेऽधिकः॥

महच्छ्रमे सुखं ह्यल्पं, श्रमे चाल्पे महत् सुखम्।
तुल्यश्रमे लभन्ते वा सुखं दुःखं पृथक् पृथक् ॥
प्रतीयतेऽशुभस्येह सुखं दुःखं शुभस्य च।
प्रारब्ध-न्यास-भोग्यानां योगादेषा विचित्रता॥

(ईशावास्यबोधामृतम्)

यद्यपि अपनी मेहनत से कमाया हुआ धन ही भोग का साधन हुआ करता है, परन्तु उस धन के भी दो भाग समझने चाहिए- 1. भोग्यधन और 2. धरोहरधन। मनुष्य भोग्यधन में से ही अपने लिए भोग कर पाता है। दान आदि जो परोपकार के कार्य होते हैं, वे सब न्यासधन=धरोहरधन में से किया करता है। निश्चित रूप से अपने परिवार की पालना भी मनुष्य इस धरोहर धन में से ही किया करता है। अत: ईशोपनिषद् के **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** – 'त्याग पूर्वक भोग कर' तथा **'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्'**– कसी के धन का लालच मत करो – इन दोनों वाक्यों का बोधार्थ यही निकलता है कि **धरोहर भाग का त्याग करता हुआ केवल अपने भोग्य भाग का ही भोग कर**।

भोग्यभाग का भी पूरा हिस्सा मनुष्य एक ही जन्म में नहीं भोग पाता; अपितु पूर्व जन्म-जन्मान्तरों का जो भाग्यधन है, उसी भाग्यधन के साथ ईश्वरीय व्यवस्था से निर्धारित किए गए भोग्यधन के कुछ हिस्से का भी भोग किया करता है। कर्म की व्यवस्था के अनुसार इस संसार में किसी मनुष्य के पास धरोहर धन, किसी के पास भोग्यधन तो किसी के पास भाग्यधन कम या अधिक हुआ करता है। कुछ लोग कम मेहनत करके अधिक सुख भोगते हैं, तो कुछ अधिक मेहनत करके भी कम सुख भोग पाते हैं, तो कुछ ऐसे हैं जो मेहनत तो एक जैसी करते हैं लेकिन उन्हें सुख या दुःख अलग-अलग मात्रा में मिलते हैं। इस संसार में किसी को अशुभ कर्म का फल सुख मिलता हुआ प्रतीत होता है, तो किसी को शुभ कर्मों के फलस्वरूप दुःख मिलता हुआ प्रतीत होता है– यह सारी विचित्रता मनुष्य जीवन में भोग्यधन-धरोहरधन और भाग्यधन के मिले-जुले फल के कारण हुआ करती है।

मनुष्य के पास सुख-दुःख कब और कैसे आ जाते हैं, प्रकट रूप में इसका कोई निश्चित मापदण्ड नहीं। लेकिन मानव-समाज की विषमताओं, जटिलताओं और उनमें होने वाले सुख-दुःख की गहराइयों में उतर कर भारतीय मनीषियों ने अपनी निरन्तर साधना से बहुत कुछ तथ्य हमारे सामने रखे हैं। भले ही कोई इन्हें केवल बुद्धि की दौड़ या अनुमान पर आधारित बातें कह कर इन्हें अनदेखा करने की कोशिश करे। लेकिन जीवन की सच्चाई से तो मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। कर्म की गति बड़ी विचित्र है। कौन सा कर्म कब फल के लिए पक कर कर्ता के सुख-दुःख का कारण बनेगा, इसे भी ठीक-ठीक पहचानना कठिन है।

एक दफ़्तर में एक ही पद पर दो व्यक्ति काम करते हैं, दोनों का समान वेतन है, लेकिन फिर भी उन दोनों को समान सुख या दुःख नहीं मिलते। ऐसा क्यों हो जाता है? उत्तर स्पष्ट है– यह ठीक है कि उपरि तौर पर मनुष्य अपने परिश्रम से जो धन कमाता है, वह उसका अपना धन कहा जाता है। तत्त्वरूप में यह सारा धन परमपिता परमात्मा का होते हुए भी, उसी धन में से जो धन परिश्रम से कमाया जाता है, वह धन व्यवहार रूप में उस कमाने वाले का कहा जाता है। वास्तव में 'अपना धन' कहा जाने वाला यह धन भी पूरी तरह से उसका

अपना नहीं होता। इस धन में भी बहुत सा भाग न्यास या धरोहर धन का होता है, जो उसके पास केवल इसलिए आया है कि वह उसे उसके असली मालिक तक पहुँचा दे। इस कर्तव्य की पालना तभी हो सकती है, जब धरोहर को हड़पने का मन में लालच न हो। आश्चर्य है कि इस धरोहर का ठीक-ठीक बंटन करने वाले को इसके फलरूप में पुरस्कार भी मिलता है। वह पुरस्कार आन्तरिक सुख-सन्तोष, सामाजिक मान-प्रतिष्ठा आदि के रूप में अभौतिक होता है। दूसरी ओर जो मनुष्य इस धरोहर को हड़पने की कोशिश करता है,उसकी कोशिश तो नाकाम होती ही है, साथ ही उसे दण्ड का भागी भी बनना पड़ता है, वह दु:ख भोगता है।

जैसे डाकिया होता है, पोस्टमैन। पोस्टमैन के पास हजारों पत्र, रजिष्ट्री, मनिआर्डर, पार्सल आदि होते हैं। उनमें उसके अपने नाम के भी होते होंगे, परन्तु बहुत कम; अधिकांश तो न्यास ही है, धरोहर है। जिसका पता लिखा है, वहाँ सुरिक्षत पहुँचाना है। काम ठीक करता रहा तो वेतन भी मिलेगा और तरक्की की भी सम्भावना है। यदि काम में लापरवाही की या लालच करके पार्सल या मनिआर्डर की रकम को उड़ाने की कोशिश की, तो पकड़े जाने पर नौकरी से तो हाथ धोना ही पड़ेगा, साथ ही जेल जाकर दु:ख भी भोगना पड़ेगा। कभी-कभी इस धरोहर को उड़ाने में मनुष्य कामयाब होता प्रतीत होता है, परन्तु ऐसा धन कभी भी धरोहर को हड़पने वाले के सुख के कारण रूप भोग का अंश नहीं बनता।

-यही व्यवस्था मनुष्य के 'अपने धन' की भी मोटे रूप में समझनी चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि पोस्टमैन के सारे पत्रों, मनिआर्डरों, पार्सल आदि पर पाने वाले के पते लिखे होते हैं। मनुष्य के धरोहर धन में कुछ के पते लिखे होते हैं, अधिकांश तो बेनाम ही होते हैं। पता लिखा होने पर भी धन की मात्रा बिल्कुल लिखी नहीं होती।

परिवार में मनुष्य के अपने आश्रित पुत्र-पुत्रियों, पति-पत्नी, माता-पिता, भाई आदि परिवार जनों में पाने वालों का पता तो लिखा होता है, पर प्राप्त धरोहर धन में से किसको कितना पहुँचाना है, यह कुछ पता नहीं। फिर भी ठीक-ठीक मात्रा में उन तक पहुँचाया जा सकता है। कैसे? 'मा गृध:' लालच से ऊपर उठकर। स्वयं पर आश्रित वृद्ध माता-पिता, पुत्र आदि यदि रोगी हैं तो स्वाभाविक है कि आपके पास धरोहर धन का भाग अधिक है, जिसका इन पर खर्च किया जाना है और भोग्य धन का भाग कम। इसके विपरीत यदि आश्रित जन स्वस्थ हैं तो धरोहर का भाग कम और भोग्यधन का भाग अधिक है। यह तो केवल एक उदाहरण मात्र है, आश्रितों पर धरोहर धन खर्च किए जाने के अन्य भी बहुत से कारण हो सकते हैं।

जो किसी असहाय, निर्बल की सहायता की जाती है, किसी अच्छे सामाजिक कार्य के लिए दान दिया जाता है, प्याऊ लगवाए जाते हैं, हस्पताल या स्कूल खुलवाए जाते हैं, यह सब भी उस धरोहर धन में से ही होता है।

मनुष्य का कर्तव्य है कि वह धरोहर धन की रक्षा भी करे और विवेकपूर्वक त्याग भी। ये दोनों कार्य ईशावास्य दृष्टि से ही सम्भव हैं, दूसरे शब्दों में 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:' और 'मा गृध:' की भावना को आत्मसात् करने पर ही हो सकते हैं। अपने भोग्यधन को भोगो, धरोहर धन का त्याग करो, इस त्याग के प्रतिफल में भी भोग्य पाओ, लालच मत करो। इसे ही कहते हैं आम के आम गुठलियों के दाम। अपना भोग्य धन तो भोगा ही, धरोहर की रक्षा व उसकी ठीक पहुँच का पुरस्कार भी पाया।

यदि धरोहर की बहुत अच्छी सँभाल और ठीक स्थान पर उसको पहुँचाया जाता है तो प्रभु उसके धरोहर धन में भी बढ़ौतरी कर देते हैं और जब

प्रभु कृपा हो ही गई तो भोग्य धन तो अपने आप बढ़ जाया करता है।

मनुष्य अपने भोग्य धन का त्याग तो चाह कर भी नहीं कर सकता और धरोहर को हड़प नहीं सकता; अत: लालच से ऊपर उठकर धरोहर धन के त्याग तथा भोग्य धन के भोग में ही मानव जीवन की सफलता है।

भोग्य धन–

मनुष्यों के सुख-दु:ख को 'भोग्यधन' और 'धरोहरधन' तो प्रभावित करते ही हैं, साथ ही 'भाग्यधन' भी प्रभावित करता है। आस-पास का वातावरण, प्रतिष्ठित या सामान्य कुल में जन्म, पैतृक सम्पत्ति का कम या ज्यादा होना सब 'भाग्य' की बात है। परन्तु 'भाग्य' भी ऊपर से नहीं टपकता, यह भी अपना ही कमाया होता है। भाग्य भी अपना ही कमाया होता है। भाग्य को 'प्रारब्ध' भी कहते हैं। वर्तमान में जो कार्य किए जाते हैं उन्हें 'क्रियमाण' या 'प्रारम्भ' कहा जाता है। 'प्रारम्भ' का भूतकालिक रूप ही तो 'प्रारब्ध' है– प्र+आ+रभ्+क्त= प्रारब्ध।

मनुष्य अपने भोग्य धन को पूरी तरह से एक जन्म में नहीं भोग पाता; क्योंकि सभी कर्म फल देने के लिए परिपाक की दशा में आ भी नहीं पाते, उससे पहले ही मृत्यु का बुलावा आ जाता है। अत: इस जन्म में फल भुगतने से जो कर्म शेष रह जाते हैं, इन्हें 'संचित कर्म' कहा जाता है। ये कर्म ही दूसरे जन्मों के लिए 'भाग्यधन' का रूप धारण कर फलीभूत हुआ करते हैं। जीव की यात्रा अनन्त है, इसके कर्मों का खाता मोक्ष तक चलता रहता है।

कल्पना कीजिए दो व्यक्ति ५०-५० हजार रूपये मासिक कमाते हैं। यदि उनमें से एक व्यक्ति भाग्य में २० लाख रूपये की एफ. डी. भी लेकर आता है और परिवार छोटा तथा स्वस्थ होने के कारण उसके अर्जित ५० हजार में से धरोहर धन भी कम है तो स्वाभाविक ही उसका भोग्य धन अधिक हो गया। दूसरा व्यक्ति यदि भाग्य में कर्ज लेकर पैदा हुआ है, धरोहर धन का भागी परिवार भी बड़ा और अस्वस्थ है, तो उसका भोग्यधन कम रह गया। फिर दोनों को एक जैसा मासिक वेतन मिलने पर भी एक जैसा सुख-दु:ख कैसे मिल सकता है? यही भोग्य, भाग्य और धरोहर धन की विचित्रता है।

मनुष्य के सुख-दु:ख उसके मासिक वेतन या सकल आय पर निर्भर नहीं करते हैं; अपितु मासिक वेतन/आय+भाग्यधन-धरोहरधन=**भोग्यधन** पर निर्भर करते हैं। शुभ कर्मों का फल सुखमय तथा अशुभ कर्मों का फल दु:खमय होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। **शुभ का फल दु:ख और अशुभ का फल जो सुख मिलता प्रतीत होता है; वह भी भोग्य, भाग्य और धरोहर धन के जोड़-घटाव का ही चमत्कार है।**

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में कई वर्ष से संचालित आयुर्वैदिक चिकित्सालय का पुन: आरम्भ २६ अगस्त को किया गया है। यह चिकित्सालय सोमवार को छोड़ सप्ताह में ६ दिन मार्च से अक्टूबर सायं ५ से ७ बजे तक व नवंबर से फरवरी सायं ४ से ६ बजे तक दो घण्टे खुलेगा।

इसमें वरिष्ठ आयुर्वेद चिकित्सक की सेवा उपलब्ध है। चिकित्सा परामर्श व चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। यदि आप अपने धन को इस पुण्य कार्य में लगाना चाहते हैं, तो परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सहयोग भेज सकते हैं। सहयोग भेजकर ८८९०३१६९६१ पर सूचित अवश्य कर देवें।

– **मन्त्री**

मैं आजन्म जिनका ऋणी रहूँगा - २

प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

गताङ्क मई द्वितीय २०२४ से आगे...

पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी - सामाजिक जीवन में धर्म प्रचार तथा समाज सेवा करते हुये मेरे जीवन की कई विशेष घटनाओं का सम्बन्ध पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी से जुड़ा हुआ है। इस लेख में पहले तो एक ही घटना देने का विचार था फिर बहुत सोचकर संक्षिप्त करके ऐसी ३-४ घटनायें देने का मन बनाया है। इनसे पाठकों को बहुत लाभ व सत्प्रेरणायें प्राप्त होंगी। आर्यसमाज के आधुनिक काल के इतिहास में एक समाज सेवी के नाते आर्यसमाज के सर्वाधिक महापुरुषों, नेताओं, महात्माओं व विद्वानों की अन्तिम वेला में उनके स्वास्थ्य का पता करने के लिए मैं उनके पास पहुँचा। इससे मुझे अत्यन्त आत्मिक सन्तोष हुआ और मैंने यह भी एक कीर्तिमान बनाया।

जब सन् १९६३ में हैदराबाद में महात्मा जी का बड़ा ऑपरेशन हुआ था तब प्रिंसिपल भगवान्‌दास जी के दोनों बड़े बेटों श्रीयुत ओ३म् प्रकाश तथा प्रिय विनय को साथ लेकर मैं शोलापुर से उन्हें पता करने गया था। यद्यपि डॉक्टरों ने उन्हें पूर्ण विश्राम करने का निर्देश दे रखा था, परन्तु पं. नरेन्द्र जी जिनकी देखरेख में आप को रखा गया था उन्होंने हमारी भेंट करवा दी। रणवीर ने तो ऐसा लिखा है कि उसी ने तब आपके ऑपरेशन की सब व्यवस्था की। यह एक मिथ्या कथन है। आर्यजगत् में हैदराबाद से बाहर का कोई आर्यसमाजी जो उनका पता करने गया और जिसे सारा आर्यजगत् जानता था वह मैं ही था। महात्मा जी हमें मिलकर बहुत आनन्दित हुए। इस ऐतिहासिक भेंट पर मुझे बड़ा गौरव है।

जब महात्मा जी को अन्तिम वेला में अपनी मृत्यु का आभास हुआ तब आपने मेरे कृपालु टोहाना के श्री बाबू बृजलाल गुप्त से कहा, ''जिज्ञासु से कहना मुझे एक बार आकर मिल जावे'' श्री बाबू जी से यह सन्देश पाकर मैं दिल्ली पहुंच गया। श्री रणवीर से मिलकर कहा, ''मेरी महात्मा जी से भेंट करवा दें।'' उत्तर मिला ''इस समय वह यहाँ नहीं हैं। जब आयेंगे मैं आपका बुलवा लूँगा और उनसे मिलवा दूँगा। रणवीर महोदय से कोई सन्देश न पाकर मैं बहुत निराश था। क्या कर सकता था? तभी धूरी जाने पर मेरे प्रेमी और महात्मा जी के एक भक्त बाबू पुरुषोत्तमलाल जी ने वहाँ मिलते ही कहा, ''महात्मा जी का आपसे विशेष स्नेह मैं जानता हूँ। मैं उनका पता करने गया था। वह आपसे मिलने के बहुत इच्छुक हैं।''

मैंने दिल्ली रणवीर से हुई सारी बात बताई तो आप बोले, ''महात्मा जी इस समय जालन्धर हैं। अभी वहाँ जाकर मिलिये।'' मैंने कहा, ''मुझे बस पर चढ़ा आवें मैं अविलम्ब जाता हूँ। मैंने उन्हें श्रीमती जिज्ञासु का यह कथन सुनाया कि हमारे इतने बड़े महात्मा ने याद किया है। आप न मिल सके। हम बाल बच्चों वाले हैं। आप न मिले तो हमें बड़ा पाप लगेगा।'' बाबू जी मुझे जालन्धर कार पर ले जाने को तैयार थे। मैंने कहा, आप मुझे पटियाला जाने वाली बस में बिठा दें। उन्होंने ऐसा ही किया। मैं जालन्धर श्री यश की कोठी में पहुंच गया। वह भक्तों से घिरे बैठे थे। उनमें जालन्धर का कोई आर्यसमाजी नहीं था।

मुझे दूर से आता देखकर महात्मा जी अत्यन्त हर्षित होकर बोले, ''वह हमारे प्यारे जिज्ञासु जी अबोहर से मेरा पता करने आ गये। अब विभिन्न सामाजिक विषयों पर आपने मुझसे लम्बी बातचीत की। कई कार्य मुझे सौंपे और कहा कि इनको निपटा कर मुझे पता देना, ''क्या परिणाम निकला है?'' उन सब कार्यों के बारे में

यहाँ अभी कुछ नहीं लिखना। हाँ! श्रीयुत अमर स्वामी लिखित प्रादेशिक सभा के इतिहास के प्रकाशन विषय में पूछा तो मैंने कहा, आपके तथा अमर स्वामी जी के निर्देशानुसार बाबू दरबारीलाल ने उसकी पाण्डुलिपि ही देखकर जाँचने के लिए मुझे नहीं भेजी तो वह कैसे छप जाती। मैं इस में क्या करूँ?''

सबसे महत्त्वपूर्ण बात तब आपने यह कही, ''अब मैं चोला बदलकर किसी नई माता की कोख से जन्म लेकर ऋषि ऋण को चुकाने में नये सिरे से लगूँगा।'' आपने अपने दर्द कर रहे पैर की ओर संकेत करके कहा, ''अब यह यही कहता है कि मेरी जान छोड़ो सो मैं नया जन्म लूँगा।''

यहाँ यह बताना अत्यावश्यक है कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में एक साथ कई विषयों पर महात्मा जी ने इतनी लम्बी बात अपने इसी प्रेमी भक्त से ही की। मैं उनका कितना ऋणी हूँ? यह मैं कैसे बताऊँ?

महाशय कृष्ण जी ने यह क्या इतिहास रच दिया - एक बार माननीय महाशय कृष्ण जी का एक पत्र पाकर मैं उनकी सोच व व्यवहार पर विचार करते-करते आर्यसमाज के निर्माताओं की महानता तथा विलक्षणता को नमन करते-करते विचारों के संसार में घण्टों खो गया। ऋषि के मिशन के लिए जीने मरने वाले वे नेता न जाने किस लोक से आये थे। महाशय जी का वह पत्र मैंने किसी पुस्तक में छपवा दिया था। यह पत्र अब भी मेरे पास सुरक्षित है।

इस पत्र में मुझे सम्बोधित करते हुए मेरे नाम के साथ प्रिय जैसा कोई शब्द जोड़ने की बजाय मेरे लिए 'मान्यवर' शब्द का प्रयोग किया। मैं उनके लिए एक बच्चा ही था। वह मेरे लिए पिता समान थे। यह तो विनम्रता और प्यार के प्रकाश की एक ऐसी घटना है जिसका उदाहरण खोज पाना असम्भव है। मैं इस 'मान्यवर' शब्द को पढ़कर यह समझ ही न पाया कि एक युवा ऋषि भक्त का मार्गदर्शन व निर्माण करने वाले इस यशस्वी नेता के मन से मेरे प्रति यह अपार स्नेह क्या छलका है कि उस पूज्य नेता ने अपने एक प्यारे अनजान बच्चे को प्यार व सत्कार क्या दिया आर्यत्व का एक नया रूप देखने को मिला। मैं तो आज तक यह नहीं समझ पाया कि उर्दू पत्रकारिता के पितामह की शान पर मनोभावों को कैसे प्रकट करूँ? उनका इतना ऋणी और कौन होगा?

श्री अमर स्वामी जी व पं. शान्तिप्रकाश जी के पत्र - जब एक लम्बे समय तक मैं प्रिं. श्रीराम शर्मा द्वारा महर्षि दयानन्द के विष दिये जाने की घटना को झुठलाने के षड्यन्त्र को विफल बनाने के लिए नये-नये प्रमाण खोजकर पत्रों में लेख पर लेख दे रहा था। तब सारे आर्यजगत् में मेरे लेखों की धूम मची हुई थी। श्रीराम शर्मा ऐसा फंसा कि इस पाप के ताप से वह परेशान होकर यहाँ-वहाँ भागता फिर रहा था। तब मैंने श्री अमर स्वामी जी तथा पं. शान्तिप्रकाश जी इन दोनों शीर्षस्थ शास्त्रार्थ महारथियों का एक-एक पत्र लिखकर यह विनती की कि आप पुराने अनुभवी शास्त्रार्थ महारथी हैं। आपने आरम्भिक काल के आर्य महापुरुषों से ऋषि के बलिदान का जो इतिहास सुना व पढ़ा है उसके आधार पर इस आक्रमण का प्रतिकार करके स्वर्णिम इतिहास की रक्षा करें।

इन दोनों पूज्य विद्वानों के पत्र मुझे लौटती डाक मिल गये। दोनों के उत्तर एक जैसे थे। दोनों का मत यह था कि आप जिस शैली से नये-नये प्रमाण व तथ्य देकर इतिहास की रक्षा कर रहे हैं, हम आपको बधाई देते हैं। आपने श्रीराम शर्मा के षड्यन्त्र को ही विफल नहीं बनाया उसके द्वारा विषयान्तर करने के जाल में भी आप नहीं फँसे। न तो आप बैग से रुपये चुराने की उसकी दुहाई को महत्त्व देते और न नन्हीं की पालकी की कहानी को छूते व छेड़ते हैं। किसी किंवदन्ती का विवेचन करने की भूल आपने नहीं की। जिस शैली व जिस योग्यता से आप उसका खण्डन कर रहे हैं इसी से आर्यसमाज

विजयी हो रहा है व होगा। यदि सब उत्तर देने लगेंगे तो आर्यसमाज के पक्ष की हानि होगी।

कुछ सज्जनों ने तब यह भी पूछा था कि आप श्रीराम के अनेक यत्न करने पर भी विषयान्तर नहीं हुए, यह आपने कहाँ से सीखा? मैंने तब आर्यपत्रों में लिखा था कि पूज्य पं. रामचन्द्र जी देहलवी ने कई बार आर्यसमाज बाज़ार सीताराम में प्रशिक्षण देते हुए यह सीख दी थी। यह उसी का फल है। इन शास्त्रार्थ महारथियों के आशीर्वाद व प्रोत्साहन के लिए मैं उनका आभारी व ऋणी हूँ।

स्वामी सत्यप्रकाश जी ने कहा - उपाध्याय जी ने अपनी आत्मकथा में यह लिखा है कि स्कूल में प्रविष्ट होते उन्हें उन दिनों कविता में एक शब्दकोश 'खालिक बारी' पढ़ाया गया। पद्य में शब्दकोश से भाषा का ज्ञान करवाया जाता था यह मेरे लिए एक नई जानकारी थी। मैंने वह आत्मकथा पढ़ते ही उपाध्याय जी से उस पुस्तक की प्राप्ति का पता पूछा तो आपने कहा, ''यह उस समय की बात है। अब यह कहाँ मिलेगी।'' मैं फिर भी तब से देश भर में यात्रायें करते हुए इसे पुस्तकालयों में खोजता रहा।

उपाध्याय जी के निधन के कोई ग्यारह बारह वर्ष पश्चात् उ. प्र. के एक गाँव से मैंने यह पुस्तक खोजकर दिल्ली में स्वामी सत्यप्रकाश जी को यह जानकारी दी। तब स्वामी जी ने कहा, ''मुझे उपाध्याय जी तथा आर्यसमाज की प्रति आपकी श्रद्धा से ईर्ष्या होती है। राजेन्द्र यह पुस्तक भी हमारे लिये कोई वैदिक अथवा उपनिषद् साहित्य की पोथी तो है नहीं। आप इतने लम्बे समय तक देश भर में इसे खोजते रहे।''

आपने स्वामी दीक्षानन्द को भी मेरी इस खोज की जानकारी देते हुए ऐसे ही शब्द कहे। कुछ समय के पश्चात् स्वामी जी महाराज इस पुस्तक को देखने अबोहर सीधे मेरे निवास पर पधारे। मैं आपको घर में प्रविष्ट होते देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। आपने खालिक बारी वह पुस्तक दिखाने के लिए मुझे कहा। मैंने पुस्तकालय में बिठाकर उन्हें वह पुस्तक दिखाई। आपने दिल खोलकर मेरी शोध की प्रवृत्ति व लगन की प्रशंसा करते हुए आशीर्वाद दिया। उत्साह बढ़ाया। मुझे भी लगा मेरी दौड़ धूप तथा इस पुस्तक की खोज का एक विश्व प्रसिद्ध विद्वान् ने मूल्याङ्कन तो किया। मैंने स्वयं को भाग्यशाली समझा।

कुछ दिनों के पश्चात् स्वामी दीक्षानन्द जी इसे देखने के लिए अबोहर पहुँचकर सीधे हमारे निवास पर आये। जो स्वामी जी को आप दिल्ली खोजी गई पुस्तक बताकर आये मैं उसे देखने के लिए आया हूँ। आपको उर्दू का कुछ ज्ञान था। उसे देखकर इसकी खोज के लिए बहुत कुछ कहा।

सज्जनवृन्द इस कोटि के प्रख्यात विद्वान् मेरी दौड़धूप व उपलब्धि को देखने आये, मूल्याङ्कन करते हुए भावुक हो गये। मैं उनका बहुत ऋणी हूँ। उनके आगमन से मेरी खोज व लगन का मूल्य व महत्त्व निश्चय ही बढ़ गया। आर्यसमाज के इतिहास की शिक्षादायक प्रेरक छोटी-बड़ी घटना को इतिहास के पृष्ठों पर लाना आर्यमात्र के लिए गौरव का विषय है, परन्तु क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं कि जिस पुस्तक की खोज पर दो प्रसिद्ध संन्यासी अबोहर उसे देखने आये उसकी चर्चा किसी आधुनिक काल के लेखक ने अपने किसी लेख में कभी नहीं की। इस पर अब क्या प्रतिक्रिया दी जावे?

श्री डॉ. धर्मवीर जी आर्य को भी श्रेय जाता है - परोपकारी में 'कुछ तड़प कुछ झड़प' स्तम्भ नियमित रूप से आरम्भ करने से पहले मैं कुछ और पत्रों में भी इस शीर्षक से विरोधियों के आर्यसमाज विषयक लेखों का उत्तर प्रत्युत्तर देता रहता था। आर्यसमाज के विचारकों विद्वानों में श्री डॉ. धर्मवीर जी ने इस स्तम्भ पर लिखने के लिए मुझे जितना प्रोत्साहित किया उसका दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता। आप समय-समय पर मुझे विरोधियों के पत्रों में छपे लेखों का उत्तर देने के लिए प्रेरित करते रहे। मैं उनके इस धर्मभाव तथा प्रेम के लिए उनका ऋणी रहूँगा। उनकी ऐसी लगन का कोई मूल्याङ्कन तो करे। आप ही के दबाव देने से रांची के ईसाई पत्र को उसमें छपे अपने लेख का परोपकारी में छपा उत्तर

आदरपूर्वक प्रकाशित करना पड़ा। मेरे उस लेख (कुछ तड़प - कुछ झड़प) पर ईसाई पत्र के सम्पादक को बाक्स बनाकर चार टिप्पण्यिाँ देनी पड़ीं। इनमें आर्यसमाज अथवा मेरे विरुद्ध एक भी शब्द नहीं था। श्री सत्येन्द्र सिंह जी आर्य ईसाई पत्रिका का वह लेख आर्यसमाज की एक पुस्तक में भी छपवा दिया।

आर्यसमाज के डेढ़ सौ वर्ष के इतिहास में ईसाई पत्र में हमारे ऐसे लेख का छपना एक अभूतपूर्व घटना है। आर्यसमाज में किसी ने भी धर्मवीर जी की इस सूझ व सेवा का कतई मूल्याङ्कन न किया।

यह सम्मान जो मूर्तरूप न ले सका - आर्यसमाज में श्री वीरेन्द्र जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभ पंजाब ने मुझे सभा के आधुनिक काल का इतिहास लिखने के लिए प्रेरणा दी। मैंने उनके पत्र का उत्तर देते हुए उन्हें इस सेवा को करने की स्वीकृति दी तो लौटती डाक आपने पूछा कि सभा आपका कितना पारिश्रमिक दे? मैंने उन्हें लिखा, ''मैं सभा से कुछ भी पारिश्रमिक नहीं लूँगा।'' तब आपने लिखा फिर सभा आपसे यह सेवा नहीं लेगी। तब मैंने लिखा, ''आप स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से विचार कर लेना वह जो कहेंगे मुझे स्वीकार्य होगा। इसके सम्बन्ध में मेरा एक लेख भी तब छपा था।''

फिर न जाने वीरेन्द्र जी ने क्यों चुप्पी साध ली। न तो मुझे यह सेवा सौंपी गई और न ही किसी और को।

प्रादेशिक सभा का इतिहास भी न छप सका - डी.ए.वी. वालों ने श्री अमर स्वामी जी से सभा का इतिहास लिखवाया। इतिहास लिखते समय महात्मा आनन्द स्वामी जी से भी आप विचार-विमर्श करते रहे। आपने इतिहास लिखकर उसकी पाण्डुलिपि बाबू दरबारीलाल को सौंपते हुए महात्मा आनन्द स्वामी तथा अपनी ओर से यह कहा, ''इसे प्रकाशित करने से पूर्व जिज्ञासु जी को दिखाया जावे। वह इसमें जो घटाना-बढ़ाना चाहें कहीं-कहीं घटा बढ़ा सकते हैं।''

मैं भी एक लम्बे समय तक आर्य प्रादेशिक सभा के समाजों की चाहना पर उनके उत्सवों व पर्वों पर प्रचारार्थ समय देता रहा था।

श्री बाबू दरबारी लाल ने डी.ए.वी. कॉलेज कमेटी के कार्यालय में मुझे श्री अमर स्वामी जी, महात्मा आनन्द स्वामी जी की इच्छा के अनुसार उस पाण्डुलिपि को देखने के लिए कहा तो मैंने कहा, ''इसे रजिस्टर्ड डाक से मेरे पास भेज देवें। मेरा पुस्तकालय अबोहर में है। वहीं ध्यान देकर इसे देखूँगा।''

कई मास बीत गये। उसने मुझे पाण्डुलिपि न भेजी। मैं समझ गया कि वह मेरे हस्ताक्षर मात्र लेना चाहता है। मैं इसमें कोई वाक्य बदल नहीं सकता और न जोड़ सकता। मैं भी चुप रहा। लम्बे समय के पश्चात् कॉलेज कमेटी व सभा के प्रधान लाला सूर्यभानु अबोहर आये तो आपने भी कहा, ''वह पाण्डुलिपि देख दें फिर छपने जावेगी।''

मैंने कहा, ''मैंने बाबू दरबारी लाल से कहा था कि आप पाण्डुलिपि भेज दीजिये। मैं ध्यान से पढ़कर अमर स्वामी जी की इच्छा के अनुसार इसे पढूँगा। जो करना है, करके प्रकाशनार्थ भेज दूँगा।'' यह सुनकर लाला सूर्यभानु मौन हो गये। एक-एक करके दरबारीलाल, लाला सूर्यभानु, अमर स्वामी जी तथा महात्मा आनन्द स्वामी चल बसे। दरबारी लाल सर्वेसर्वा था। वह पाण्डुलिपि भी उसके साथ ही चली गई।

मैं अमर स्वामी जी तथा महात्मा आनन्द स्वामी जी के प्यार के लिए उनका ऋणी हूँ। यह कार्य हो जाता तो अच्छा था, परन्तु दरबारीलाल सर्वेसर्वा था उसे कौन कहे कि यह पाण्डुलिपि अबोहर भेज दो?

ऐसी रोचक व प्रेरक कई घटनायें दे सकता हूँ। फिर कभी समय मिला तो लिख दी जावेंगी।

किसी राजनेता व नेता से विमोचन न करवाया - मेरी साढ़े चार सौ से ऊपर पुस्तकें छप चुकी हैं। मैंनें किसी नेता व राजनेता से न तो प्राक्कथन ही लिखवाया और न विमोचन करवाया। न सौदा करके किसी के लिए कोई पुस्तक लिखी। मेरे लिए मिशन ही सर्वस्व रहा है और रहेगा। **वेद सदन, नई सूरज नगरी, अबोहर।**

हम वेद धर्म के अपराधी

आचार्य रामनिवास 'गुणग्राहक'

सबसे पहले तो मैं सुधी पाठकों से अग्रिम क्षमायाचना कर लेना उचित समझता हूं, क्योंकि इस लेख के माध्यम से मैं जो विचार प्रकट करना चाहता हैं, सम्भवत: वे उनके हृदय में कण्टकवत् चुभें। हाँ अधिक ज्वलनशील होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैंने 'हम वेद धर्म के अपराधी' लिखकर स्वयं को भी उन मित्रों के साथ मिला लिया है, जिन्हें अधिक चुभन होने वाली है। मैं तो वह चुभन लगभग प्रतिपल भोग रहा हूं। मेरा हृदय तो प्रतिपल अपने आर्योचित कर्त्तव्यों को लेकर मेरे मन-मस्तिष्क को झिझोड़ता रहता है। मैं अपनी यह चुभन अपने उन मित्रों तक पहुँचाना चाहता हूँ, जो कर्त्तव्य बोध को आगे करके वेदधर्म की सुरक्षा के लिए और कुछ नहीं तो जो वेदधर्म को हानि पहुंचाने वालों के नायक बने हुए हैं, उनके सामने आकर उन्हें आभास दिला सकें कि वे जाने-अनजाने में महर्षि दयानन्द की जीवन भर की त्याग-तपस्या को मैली करके अगली पीढ़ी तक पहुंचा रहे हैं। साथ ही मैं सीधे उन आर्यनेताओं से भी निवेदन करना चाहता हूं कि वे लोकैषणा के वशीभूत होकर धर्महन्ता न बनें। मेरा हृदय इस बात को स्वीकारता है कि कुछ 'नीति निपुणों' को छोड़ दें तो 'अपनी ढपली अपना राग' को चरितार्थ करने वाले सभी जन इस प्रवृत्ति के भयंकर परिणामों के बारे में विचार नहीं कर पा रहे। यह तो हमें मानना ही पड़ेगा कि धरती तल पर आर्यसमाज ही ऐसी संस्था है जो वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए प्रयासरत है। वह आर्यसमाज ही किन्हीं कारणों से निर्बल-निर्जीव होकर अशक्त और असमर्थ हो जाता है, वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार का काम नहीं कर पाता तो कौन है संसार में जो ऋषि दयानन्द की एतदर्थ की गई तप:साधना को जीवित रख सकेगा? इस विशाल भूमण्डल पर भारत भूमि ही तो है जो परमेश्वर की वेदवाणी की महत्ता उपयोगिता को सच्चे स्वरूप में स्वीकार कर-करा सकती है। इस भारत भूमि में गिने चुने लोग ही तो हैं जो साक्षात् वेद से जुड़कर वेदविद्या के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयासरत हैं। 'कण्वन्तो विश्वमार्यम्' का नारा लगाते समय हमें विश्व जनसंख्या के सामने अपनी संख्या व स्थिति पर भी विचार कर लेना चाहिए। हम कैसे भूल जाएं कि अपने गाँव नगर में अपनी गिनती कहीं तीन-तेरह में नहीं होती और आगे चलकर देखने की इच्छा हो तो अपने घरों में वैदिक विचारों व संस्कारों को लेकर कितने भाग्यशाली हैं जो सन्तोषजनक स्थिति में है। क्या यह सब देख-जानकर हम आर्यजन एक-दूसरे के भरोसेमन्द सहयोगी-सहायक नहीं बन सकते? हम जानते हैं कि आर्यसमाज का सामाजिक सुधार कार्य या किसी प्रकार का खण्डन-मण्डन करते समय कहीं या कभी वैर-विरोध की स्थिति बन जाए तो हमारा घर-परिवार और मित्र वर्ग हमारे साथ खड़े नहीं होंगे, क्योंकि वे हमारे इस प्रचार कार्य को पहले से ही अच्छा नहीं मानते तो संकट के समय यही कहेंगे कि हम तो पहले से ही मना करते थे कि इन व्यर्थ के पचड़ों में मत पड़ो, क्योंकि किसी की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचाते हो?

जो वेदधर्म और वैदिक सिद्धान्तों में श्रद्धा, विश्वास नहीं रखता, वो चाहे अपना पिता, पुत्र या भाई ही क्यों न हो, वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार करते हुए संकटग्रस्त होने पर सच्चे मन से हमारे साथ खड़ा नहीं रहेगा। इधर हम आर्यसमाजी कहलाने वाले कार्य योजना व लक्ष्य एक होने के बाद भी गुटबन्दी के चलते एक-दूसरे के संकट में काम आने वाले साथी न बन सके तो जन्मना जातिवाद और धार्मिक पाखण्डों जैसे संवेदनशील विषयों पर निर्भीक होकर सत्य कहने का साहस कौन दिखायेगा?

कैसे दिखायेगा? क्या आपस के असहयोग-अविश्वास के चलते आर्यसमाज अपना पौरुष व तेज नहीं खो बैठा? क्या हम समझौतावादी नहीं हो गये? वर्तमान में संगठित शक्ति के अभाव में आर्यसमाज अपनी प्रखरता और प्रभावोत्पादकता को सुरक्षित नहीं रख पा रहा है। कभी हम शान्त मन से विचार करके देखें तो हमें स्वीकारना पड़ेगा अपनी संगठित शक्ति को खोकर आर्यसमाज अपने सिद्धान्तों की सुरक्षा तक नहीं कर पा रहा। हमें मानना पड़ेगा कि संगठित शक्ति के अभाव में आर्यसमाज अपनी सम्पत्तियों व सिद्धान्तों की सुरक्षा में असमर्थ हो गया है। अगर हम इस सच को स्वीकारते हैं तो तनिक विचार करके बताओ कि इस दुरवस्था के लिए दोषी कौन है? न न व्यक्तियों की गिनती न करो, नेता कहलाने वाला कोई भी व्यक्ति अपने अनुगामियों की प्रवृत्तियों का मुखौटा ही होता है। कभी हमने यह सोचने और जानने का कष्ट किया कि जीवनभर महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों और वेद के सिद्धान्तों, आदर्शों के विपरीत आचरण करने वाले अग्निवेश के मरते दम तक सहयोग-समर्थन में खड़े रहने वाले कौन थे? वे स्वयं को छाती ठोककर महर्षि दयानन्द के पक्के भक्त भी कहते रहे। समलैंगिक सम्बन्धों के समर्थन में हस्ताक्षर करके सक्रिय अभियान चलाने वाले स्वामी अग्निवेश को अपना नेता, नायक व आदर्श माननेवाले वैदिकधर्मी व ऋषिभक्त होने का दावा करें और आर्यसमाज उन्हें इस रूप में स्वीकार कर ले। माना कि बहुत-से आर्यो ने उसका प्रबल व सतर्क विरोध भी किया, मगर उसे अपना नेता व ऋषिभक्त मानने वालों की संख्या तो निरन्तर बढ़ती रही और वे स्वयं को वैदिक धर्मी ऋषिभक्त कहते रहे और आर्यसमाजी कहलाने वाले उन्हें आर्यनेता के रूप में अपने मंचों पर बुलाते रहे, उनके मंचों पर जाते रहे।

शरीर यात्रा पूरी करके जा चुके अग्निवेश को पुनर्जीवित करना मेरा उद्देश्य नहीं, मैं तो प्रकारान्तर से आर्यसमाजियों को यह दिखाना चाहता हूं कि हम स्वयं भी तो कहीं - वैदिक धर्म के अपराधी नहीं बनते जा रहे? महर्षि दयानन्द के सच्चे भक्त कहलाने वालों के हृदय में महर्षि के मन्तव्यों व वेद के सिद्धान्तों-आदर्शों के विरुद्ध जीवनभर आचरण करने वाले किसी भी व्यक्ति के प्रति थोड़ी-सी भी सहानुभूति है अपनापन है, स्वीकृति है तो वह वेदधर्म के प्रति स्वयं को निर्दोष मानने की भूल न करे। जो व्यक्ति सज्जनों व दुर्जनों के लिये समान भाव से सम्बन्ध बनाये रखता है और स्वयं को व्यवहार कुशल मानता है क्या यह आत्मप्रवंचना नहीं है?

ईश्वर ने सभी प्राणियों के कल्याण के लिये जो वेदज्ञान दिया है, वह भी पूर्णत: तर्क संगत है, विज्ञान सम्मत है। संसार में अन्य जितने भी ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान कहलाते हैं, उनको पढ़कर देखिये- उनमें ईश्वर के स्वरूप, स्वभाव से लेकर ईश्वरगुण व कार्य, जैसे सृष्टि रचना: मनुष्यों के कर्मों का न्यायपूर्वक फल देना आदि न तो तर्कसंगत है और न विज्ञान सम्मत। अगर वो भी सच में ईश्वरीय ज्ञान ही होते तो उनमें सृष्टि बनाने से लेकर कर्मों के न्यायपूर्वक फल देने की व्यवस्था तर्क व विज्ञान सम्मत होती। क्या ऐसा सम्भव है कि परमात्मा सृष्टि को जिस रीति-नीति से बनाता-चलाता है, जब मनुष्यों को उसका ज्ञान देने लगे, तो सब कुछ उल्टा-सीधा और अविश्वनीय ज्ञान दे? भला परमात्मा ऐसा क्यों करेगा? यह तो कुछ मनुष्यों की लीला है, जो अपने आधे-अधूरे और बहुत कुछ उल्टे-सीधे लेखों को विश्वसनीय और स्वीकार्यता बढ़ाने के लिए ईश्वर का ज्ञान घोषित कर देते हैं। भोले-भाले धर्मभीरू स्त्री-पुरुष उसे वैसा ही मान लेते हैं, लेकिन विचारवान् बुद्धिजीवी और समझदार लोग थोड़ी बुद्धि लगाकर सोचते विचारते हैं तो सारी पोल खुल जाती है। ऋग्वेद १३१.२ में आता है- ''परमेश्वर वेद द्वारा मनुष्य के विद्या धर्म रूपी व्रत व लोकों के नियम रूपी व्रत को सुशोभित करता है।'' यहां स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वेद के द्वारा ईश्वर ने हम मनुष्यों के विद्या व धर्म के रूप में जो व्रत अर्थात् व्यवहार (कर्त्तव्य

कर्म) है, वे भली भांति प्रकट प्रकाशित किये हैं, तथा पृथ्वी, सूर्य आदि लोकों के जो नियम रूपी व्रत हैं अर्थात् जिन अटल अपरिवर्तनीय नियमों के अनुसार ये लोक जो गति कर रहे हैं, उनका भी सम्यक् ज्ञान ईश्वर ने वेद के माध्यम से हमें प्रदान किया है। क्या मानवीय कर्त्तव्यों का मानवोचित वर्णन तथा लोक-लोकान्तरों का विज्ञान सम्मत वर्णन ईश्वरीय ज्ञान कहे जाने वाले ग्रन्थों में मिलता है? उन ग्रन्थों में तो ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के सम्बन्ध में भी बुद्धि संगत वर्णन नहीं है।

अब तनिक भाषा को लेकर विचार करें तो तार्किक दृष्टि से भाषा को मानवीय उपलब्धि कहने वाले स्वयं को जाने-अनजाने में उपहास का केन्द्र बना लेते हैं। भाषा की उत्पत्ति को लेकर विज्ञान के क्षेत्र में जितने कथित सिद्धान्त, वस्तुत कल्पनाएँ प्रचारित हैं, वे सज्जनों की दृष्टि में हास्य विनोद के काम आती है। हम उनकी निस्सारता और विनोदजनकता पर चर्चा करने लगे तो लेख का कलेवर अनियन्त्रित हो जाएगा, तो चलो इन सबकी निस्सारता मैक्समूलर के शब्दों में बताते चलें। वे लिखते हैं- भिन्न-भिन्न भाषा परिवारों में जो चार-पाँच सौ धातु मूल रूप में शेष रह जाते हैं, वे न तो मनोरगव्यजक ध्वनियां (हर-हर, आह, हाय वाह आदि) है, और न केवल अनुकरणात्मक शब्द (टन-टन खटपट, धम-धम प्रं प्र आदि) ही। हम उनको वर्णात्मक शब्दों का साँचा कह सकते हैं।.... प्लेटो के साथ हम यह कह सकते हैं कि वे स्वभाव से ही विद्यमान हैं। प्रत्युत हम इतना और जोड़ देते हैं कि स्वभाव से कहने का हमारा आशय ईश्वर की शक्ति से है (वैदिक सम्पत्ति से)। श्री आर.सी. ट्रीनिच- स्टडी ऑफ वर्डसा में लिखते हैं- ''ईश्वर ने मनुष्य को वाणी उसी प्रकार दी है, जिस प्रकार बुद्धि दी है क्योंकि मनुष्य का विचार ही शब्द है, जो (तभी) बाहर प्रकाशित होता है।'' ट्रीनिच कहना चाह रहे हैं कि परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि दी है, इसमें किसी को कभी कोई सन्देह नहीं रहा, तो बुद्धि प्रसूत विचारों के प्रकट करने वाली भाषा को लेकर सन्देह क्यों कर होगा? प्रो. पाट को स्पष्ट शब्दों में लिखना पड़ा- किसी भी पिछली जाति ने एक भी धातु नया नहीं बनाया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वही शब्द बोले जा रहे हैं, जो सर्गारम्भ में मनुष्य के मुँह से निकले थे।

ये तो यूरोपीय विद्वानों के तर्कोत्पन्न सटीक से लगने वाले विचार हैं, इनमें निश्चयात्मकता का अभाव है, लेकिन भारतीय साहित्य - सरणी उस आदि काल से ही सतत रूप से प्रवाहित रहने के कारण निश्चयात्मक स्वर में संसार की समस्त भाषाओं को दो भागों में बाँटती है। निरुक्त १३.९ में किसी प्राचीन ब्राह्मण से उद्धृत वचन हैं - **तस्मात् ब्राह्मणा उभयी वाचं वदन्ति या च देवानां या च मनुष्याणम्।** अर्थात् ब्राह्मण दो प्रकार की वाणी बोलते हैं- या तो दैवीय या मानुषी। काठक संहिता १४.५ में भी यही कहा है - '**तस्मात् ब्राह्मणा उभे वाचौ वदन्ति दैवीं च मानुषी च।**' स्पष्ट है कि परमात्मा प्रदत्त वेद देव वाणी तथा उससे इतर शेष सब भाषाएं मानुषी के रूप में स्वीकृत हैं। शतपथ १.४.१३५ के अनुसार तो वेद मन्त्रों को उच्चारण सुविधा की दृष्टि से सन्धि विच्छेद करके बोलना भी मानुषी भाषा माना जाता है। रामायण सुन्दर काण्ड ३०.१७ में आता है - 'वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।' अर्थात् मैं यहां मानुषी वाणी संस्कृत को बोलूँगा। तैत्तिरीय संहिता - ६.४.७ में कहा है- 'वाग् वै पराच्य व्याकृत वदत्' अर्थात् पराचीवाक् अव्याकृत है। भाव यह है कि मूल वाक् (दैव वाक्) का व्याकरण आदि जब न रचा गया था। व्याकरण तो उस मूल वाक् - दैव वाक् के अनुसार भाषा विज्ञ ऋषियों ने बनाया है। अब इन वचनों के आलोक में हम उन ग्रन्थों का परीक्षण करके देखें कि क्या भाषा की दृष्टि से उनको ईश्वरीय ज्ञान कहा जा सकता है? बाइबिल और कुरान की बात करें तो ये दोनों एक स्वर में मानते हैं कि कभी इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक ही भाषा बोली जाती थी। निश्चित रूप से इनका आशय संस्कृत भाषा से ही

होगा। हाँ सभ्यताभिमानी योरोपियन भारत को यह गौरव प्राप्त करते हुए नहीं देख सकते इसलिए उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार एक गप्प और आंक दी कि संस्कृत से भी पहले एक भाषा और प्रचलित थी जो संस्कृत व योरोपियन भाषाओं की जननी थी, इसलिए उसे कल्पित नाम दिया- भारोपियन। सच में यह कल्पित भाषा योरोपियनों के लिए ऐसा भार बन गई है जो न तो उनसे उठाया जा रहा है ओर न गिराया ही जा रहा है। योरोप इसके नीचे दबा हुआ सिसकता ही रहेगा।

दैव भाषा वह है जो देवों के देव परम देव परमेश्वर के द्वारा वेद के रूप में अपने अमृत पुत्र मानव को सृष्टि के प्रारम्भ में दी गई है। जो मानव के ज्ञान-विज्ञान व व्यवहार का आधार तो है मगर मानवीय हस्तक्षेप से सर्वथा अछूती है। मानव द्वारा व्याकरण में आबद्ध किये जाने पर अथवा उच्चारण में सुविधा की दृष्टि से सरल किये जाने वाल वह भाषा दैव न रहकर मानुषी हो जाती है। क्या ऐसा कुरान और बाइबिल की भाषा के बारे में कहा जा सकता है? क्या इनकी भाषा को दैव भाषा कहने व सिद्ध करने का साह ये लोग दिखाएंगे? अरे! दैवभाषा तो क्या इनसे तर्क व प्रश्नोत्तर करने लगें तो इनके लिए अपने इन ग्रन्थों की भाषा को भाषा सिद्ध करना तारे तोड़कर लाने जैसा हो जाएगा। भाषा के मापदण्डों पर संस्कृत व हिन्दी को छोड़कर कोई भी तथाकथित भाषा खरी नहीं उतरती। ऐसे में इन ग्रन्थों को ईश्वरीय ज्ञान कहना कोरा दुराग्रह नहीं तो क्या है? इनके ग्रन्थों की भाषा कभी भूमण्डल के मानव मात्र की भाषा नहीं रही, तो क्या इनका तथाकथित ईश्वरीय ज्ञान कभी सब मनुष्यों के लिए सुलभ रहा? नहीं रहा तो क्यों नहीं रहा? क्या यह ईश्वरकृत भेदभाव व पक्षपात न कहा जाएगा? हम बता चुके हैं कि इनके ईश्वरीय ज्ञान कहे जाने वाले ग्रन्थ स्वयं घोषणा कर रहे हैं कि कभी भूमण्डल भर कि एक ही भाषा रही है। आज हम डंके की चोट पर इनकी इस घोषणा को नकार रहे हैं। यह उनकी अज्ञानता है जो हमारे देश से ही आयातित है। हम भी संस्कृत को 'देवभाषा' कहते हुए नहीं थकते। हमने जो निरुक्त काठक संहिता और तैत्तरीय संहिता के जो वचन दिये हैं, वे तो यह प्रमाणित करते हैं कि संस्कृत मानुषी भाषा है। रामायण भी यही घोषणा कर रही है तो हमें भी यह सत्य स्वीकार कर लेना चाहिए। अब भी कोई कठिनाई हो तो भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का यह घोष सुन लो -

''अतिभाषा तु देवानां आर्यभाषा तु भू भुजाम्।
संस्कार पाठ्य संयुक्ता, सप्तद्वीपा प्रतिष्ठिता।।''

(१७.२८.२९)

अर्थात् अतिभाषा तो देवों की और आर्यभाषा राजपुरुषों की। प्रकृति प्रत्यय के पूर्ण संस्कार से युक्त सातों द्वीपों में प्रचलित प्रतिष्ठित भी। वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने की भाषा की दृष्टि से इससे प्रबलतम युक्ति क्या हो सकती है कि वेद की भाषा को हमारे ऋषि-मुनि परम्परा से देव भाषा के रूप में जानते मानते ओर प्रचारित करते आये हैं। यह भाषा मानवीय हस्तक्षेप से सर्वथा मुक्त है। बात चाहे व्याकरण में बाँधने की हो या उच्चारण की सुविधा की, देवभाषा के सामने मानव की सामर्थ्य बौनी ही रही है। संसार का सारा साहित्य, सारी भाषाएँ समग्र सभ्यता-संस्कृति के उच्च आदर्श-परम्परायें नष्ट हो जाएं, केवल वेद ही शेष बचें तो कालान्तर में उन वेदों के आश्रय से मानव तप-साधना के सहारे सब कुछ पुनः प्राप्त कर लेगा, क्योंकि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। मनु की घोषणा है-

''सर्वेषां तु नामानि, कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।''

(१.२१)

''चातुर्वर्ण्यं त्रयोलो काः चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यत् च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।।''

(१२.१७)

संसार की सब वस्तुओं-व्यक्तियों के नाम, कर्म से

लेकर चारों वर्ण- आश्रम आदि शब्द-व्यवहार का प्रारम्भ, भूत-भविष्य वर्तमान आदि वेद से ही प्रसिद्ध होकर लोक व्यवहार में प्रचलित हुए हैं। क्या ऐसा उन ग्रन्थों से सम्भव है, जिन्हें कुछ लोग ईश्वरीय ज्ञान बताते हैं? उनसे पहले भाषा विद्यमान थी, संसार का सब व्यवहार सुचारू रूप से चल रहा था। जीवन के हर क्षेत्र में मनुष्य ने पर्याप्त प्रगति कर ली थी, अच्छे-बुरे, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य का सम्यक् ज्ञान मानव को था, तब परमात्मा को अपना ऐसा तथाकथित ज्ञान देने की क्या आवश्यकता थी जो न्याय-नीति व ज्ञान-विज्ञान के मापदण्डों के निकट जाने से ही डरता है? वस्तुत: धरत तल पर वेद ही एक मात्र ऐसा सच्चा ईश्वरीय ज्ञान है, जिसे हर कसौटी पर परखकर, हर तुला पर तौलकर तर्कों-युक्तियों व प्रमाणों सहित ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध किया जा सकता है।

''न अन्यः ग्रन्थः विद्यतेऽयनाय।''

*** निवेदन ***

कीर्तिशेष आचार्य धर्मवीर जी ने अपने दानदाताओं के सहयोग से ऋषि उद्यान में निरन्तर चलने वाले ऋषि लंगर की व्यवस्था की थी, जो सतत संचालित हो रही है। इसमें ऋषि उद्यान की वृहद् भोजनशाला में **ऋषि उद्यान में निवास करने वाले योगसाधकों, संन्यासियों-वानप्रस्थियों, ब्रह्मचारियों व आचार्यों के भोजन, दुग्ध, फल इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।**

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों, विद्वानों, दर्शनार्थियों इत्यादि के निवास तथा भोजनादि की व्यवस्था इसके अन्तर्गत संचालित की जाती है।

आर्य दानदाता-परिवारों के सहयोग से ही यह अतिथि-यज्ञ सम्भव हो पा रहा है। अत: हम सभी आर्य परिवारों का दायित्व एवं कर्त्तव्य है कि हम इस यज्ञ में होता बनकर निरन्तर दान-रूपी आहुति प्रदान कर पुण्य के भागी बनें। विभिन्न संस्कारों एवं अन्य शुभावसरों पर अपनी दान-रूपी आहुति देना न भूलें, ताकि यह लोकोपकारी अतिथि यज्ञ निरन्तर चलता रहे।

इस अतिथि यज्ञ हेतु आप **५१००/-(पाँच हजार एक सौ रुपये) प्रतिवर्ष** भेजकर अपना सहयोग प्रदान कर अनुग्रहीत करें।

ओम्मुनि — **प्रधान**

कन्हैयालाल आर्य — **मन्त्री**

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है।

महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

मूर्ति-पूजा ने क्या किया?

श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने अपने जीवन का दीर्घकाल महर्षि के जीवनचरित की खोज में लगाया, जिसके परिणामस्वरूप आर्यजगत् महर्षि के जीवन से भलीभांति परिचित हो सका है। -सम्पादक

मूर्ति-पूजा ने भारत के अकल्याण की जो सामग्री एकत्रित की है, उसे लेखनी लिखने में असमर्थ है। मूर्ति-पूजा ने भारतवासियों का जो अनिष्ट किया है, उसे प्रकट करने में हमारी अपूर्ण विकसित भाव प्रकाशक-शक्ति अशक्त है। जो धर्म सम्पूर्ण भाव से आन्तरिक था आध्यात्मिक था उसे सम्पूर्ण रूप से बाह्य किसने बनाया? मूर्ति-पूजा ने कामादि शत्रुओं के वमन और वैराग्य के साधन के बदले तिलक और त्रिपुण्ड किसने धारण कराया? मूर्त्ति-पूजा ने ईश्वर भक्ति, ईश्वर प्रीति, परोपकार और स्वार्थ त्याग के बदले अंग में गोपीचन्दन का लेप, मुख से गङ्गा लहरी का उच्चारण कण्ठ में अनेक प्रकार की मालाओं का धारण किसने सिखाया? मूर्त्ति-पूजा ने। संयम, शुद्धता, चित्त की एकाग्रता आदि के स्थान में त्रिसीमा [धारणा, ध्यान, समाधि] में प्रवेश न कर केवल दिन विशेष पर खाद्य विशेष का सेवन न करना, प्रात: काल, मध्याह्न और सायंकाल में अलग-अलग वस्त्रों के पहनने का आयोजन और तिथि विशेष पर मनुष्य विशेष का मुख देखना तो दूर रहा उसकी छाया तक का स्पर्श न करना, यह सब किसने सिखाया? मूर्त्ति-पूजा ने। हिन्दुओं के चित्त से स्वाधीन-चिन्तन की शक्ति किसने हरण की? मूर्त्ति-पूजा ने। हिन्दुओं के मनोबल वीर्य्य, उदारता, और सत्साहस को किसने दूर किया? मूर्त्ति-पूजा ने। प्रेम, संवेदना और परदु:ख कातरता के बदले घोरतर स्वार्थपरता की हिन्दुओं के चरित्र में किसने बढ़ाया- मूर्त्ति-पूजा ने। हिन्दुओं को अमानुष अपितु पशुओं से भी अधम किसने बनाया मूर्त्ति-पूजा ने। आर्यावर्त्त के सैकड़ों टुकड़े किसने किये? मूर्ति-पूजा ने। आर्यजाति को सैकड़ों सम्प्रदायों में किसने बाँटा? मूर्तिपूजा ने। इस देश को सैकड़ों वर्षों पराधीनता की लोहमयी शृंखला में किसने जकड़े रखा? मूर्ति-पूजा ने। कौन सा अनर्थ है जो मूर्ति-पूजा द्वारा सम्पादित नहीं हुआ। कोई चाहे कुल, धन, ख्याति में कितना ही बड़ा क्यों न हो यदि वह किसी अंश में भी मूर्ति-पूजा का समर्थन करता है। तो हमें यह कहने में अणुमात्र भी संकोच नहीं होगा कि यह व्यक्ति किसी अंश में भी भारतवर्ष का मित्र नहीं हो सकता, क्योंकि मूर्ति-पूजा भारतवर्ष के सारे अनिष्टों का मूल है।

दयानन्द ने इस प्रबल शत्रु के विरुद्ध प्रचण्ड युद्ध का आयोजन करके न केवल भारत की आचार्य मण्डली में अपने लिये अद्वितीय आसन बना लिया है, अपितु हिन्दुओं के प्रकृत कल्याण के स्वाभाविक द्वार को भी खोल दिया है। इस देश के प्राय: सभी आचार्यों ने, सम्भवत: सभी सम्प्रदायों के प्रवर्तकों ने मूर्ति-पूजा के साथ सन्धि कर ली या उसके साथ किसी न किसी प्रकार का समझौता करके चलने की चेष्टा की है। इसके विपरीत स्वामी दयानन्द से बहुत स्थानों में और बहुत बार मूर्ति पूजा का खण्डन छोड़ने का अनुरोध किया गया और उन्हें प्रलोभन तक दिये गये, लेकिन वे सब प्रलोभनों से ऊपर रहे और जीवन पर्यन्त वाणी और लेखनी से निराकार ईश्वर का समर्थन और मूर्त्ति पूजा का प्रबल खण्डन किया।

मूर्ति-पूजा के विरुद्ध प्रचण्ड संग्राम में दयानन्द अतुल्य अनुपम और अद्वितीय थे। जैसे मूर्त्ति पूजा आर्य संस्कृति की प्रधानतम वैरिणी है वैसे ही वे मूर्त्ति पूजा के प्रधानतम प्रबलतम वैरी थे। उन्होंने समस्त भारत भूमि में अति उज्ज्वल और प्रबल भाव से इस बात का प्रचार किया कि जब तक मूर्ति-पूजा समूल नष्ट न होगी तब तक भारत भूमि का कोई भी कल्याण साधित न होगा।

(महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र की भूमिका)

ज्ञानसूक्त - १४

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद १०/७१ 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणा संयजन्ते सखायः।
अत्राह त्वं जहुर्वेद्याभिरोह ब्रह्माणो विचरन्त्युत्वे।।

हम इस वेद की चर्चा में ऋग्वेद के १०वें मण्डल क ७१वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। इस सूक्त के मन्त्रों का ऋषि बृहस्पति है और इसका देवता ज्ञान है। हम जानते हैं, देवता का अभिप्राय होता है कि इस मन्त्र का क्या विषय है, किस बात की चर्चा है और जो लोग इसको गहराई से जानते-समझते हैं और बताते हैं, उनको हम ऋषि कहते हैं। आज जो हमारी चर्चा का मन्त्र है, उसमें ज्ञान के साथ एक अद्‌भुत बात कही गयी है। संसार में ज्ञान का क्या महत्त्व है, तो पहली बात तो यह कही है कि जो ज्ञानी है और अज्ञानी है संसार में, उसमें ज्ञान का महत्त्व है। इस बात को तो हम में से कोई भी समझ सकता है। अर्थात्, किसी शहर में या गाँव में, वन प्रान्त में, कोई गाँव ऐसा हो जिसमें कोई पढ़ा-लिखा नहीं है। दस-बीस-पचास में कोई पढ़ा-लिखा होता है तो जैसे उसका महत्त्व बढ़ जाता है, वह ५००, हजार के मुकाबले में वह एक श्रेष्ठ होता है। यह बात ज्ञान की श्रेष्ठता है, ज्ञान की श्रेष्ठता का यह प्रमाण है। श्रीकृष्ण जी महाराज गीता में एक बहुत ही सुन्दर पंक्ति लिखते हैं - न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रम् इह विद्यते। इस संसार में ज्ञान से पवित्र कुछ भी नहीं है। इसलिए हम परमेश्वर को ज्ञानस्वरूप कहते हैं। वो अत्यन्त पवित्र है, उसके ज्ञान में कोई भी कमी नहीं है। सारा अज्ञान, ज्ञान के अभाव का नाम है, ज्ञान की अनुपलब्धि, विपरीत ज्ञान का नाम है। परमेश्वर के अन्दर न ज्ञान का अभाव है, न कमी है, न विपरीत है इसलिए वह केवल ज्ञान है और ज्ञान मात्र है। इसलिए उपनिषद्‌कार कहता है सत्यं ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म। ब्रह्म को जो स्वरूप है वह सत्य है, ज्ञान है, अनन्त है। इसलिए परमेश्वर का ज्ञान परमेश्वर जैसा ही पवित्र है। अर्थात् हम जितने अधिक ज्ञानवान होते जाते हैं, हम परमेश्वर के साथ उतने ही अधिक जुड़ते हैं या जुड़ सकते हैं। क्योंकि पवित्र से पवित्र वस्तु का सम्बन्ध बहुत सहज और स्वाभाविक होता है। तो यहाँ पर जो बात हमें समझाई गयी है वह ज्ञान की श्रेष्ठता और इसे जब हम जानते हैं तो इसे एक और पंक्ति, जिसे मैं याद कर सकता हूँ, वो आचार्य चरक की एक पंक्ति है। आचार्य चरक अपने ग्रन्थ चरक संहिता उसमें ज्ञान के बहुत सारे साधन जो उन्होंने बताए हैं उसमें उन्होंने ज्ञान का विचित्र साधन बताते हुए कहा है कि गुरु हमें पढ़ाता है, हम पढ़ते हैं, हम जानते-देखते हैं, बहुत सारी चीजों से हमें ज्ञान प्राप्त होता है, जब विद्वान् लोग आपस में बैठ कर चर्चा करते हैं। इसे आचार्य चरक ने एक दूसरी तरह से कहा है- तद् विद्य संभाषा परिषद्। तद् विद्य का अर्थ होता है, उस विषय के जो विशेषज्ञ होते हैं, जानकार होते हैं, उनकी जो परिषद् होती है और

उसमें जो संभाषा होती है, संवाद होता है, विवेचन होता है, वो संभाषा परिषद् को ज्ञान का सर्वोत्तम स्थान मानते हैं। उन्होंने एक बड़ा विचित्र तर्क दिया है- वे कहते हैं कि गुरु पढ़ाते हुए हर चीज को नहीं पढ़ाता, बताता। कुछ न कुछ रह जाता है, छिपा हुआ होता है। मान लो किसी गुरु को किसी संवाद में सम्मिलित होना पड़े।

किसी तद् विद्य सम्भाषा परिषद् में भाग लेना पड़े, तो उस समय में वह अपनी कोई चीज रचा के नहीं रखता। वैसे ही जैसे युद्ध में कोई अपने हथियारों को बचा कर नहीं रखता। वैसे तो बहुत बचाकर, संभाल कर सुरक्षित रखता है, लेकिन जब युद्ध की परिस्थिति आ जाती है, तो मनुष्य अपने सारे हथियारों को खुल कर प्रयोग करता है। तब उसका एक मात्र उद्देश्य होता है शत्रु पर विजय पाना। वैसे ही जब हमारा वाक् संग्राम होता है, वाक् युद्ध होता है, संवाद होता है, शास्त्रार्थ होता है, उसमें कोई भी व्यक्ति अपने किसी ज्ञान को बचाकर छिपाकर नहीं रखता, नहीं रख सकता। उस समय उसका अंत:करण विजय के लिए, श्रेष्ठता के लिए व्याकुल होता है। ऐसी स्थिति में, उस श्रेष्ठता के पाने के लिए उसके पास जितने उपाय, जितने साधन जितनी जानकारी, युक्ति, जितने तर्क, जितने प्रमाण हो सकते हैं, वे सब के सब उपस्थित करके उसे प्रसन्नता होती है। इसके लिए तद् विद्य सम्भाषा परिषद् के विषय में आचार्य चरक कहते हैं कि ज्ञान के ग्रहण का जो सर्वोत्तम स्थान है, वो तद् विद्य सम्भाषा परिषद् है। आज भी तो परम्परा हम देखते हैं। इसे आज कहीं विज्ञान कांग्रेस कहते हैं, कहीं दर्शन कांग्रेस कहते हैं। तो ज्ञान जब वहाँ संवाद् में बदलता है तो हमें बहुत तरह की उपलब्धि एक साथ होती है, हम जब किसी गुरु में पढ़ते हैं तो एक गुरु से पढ़कर, उसके पास जो ज्ञान है, हम केवल उसे पाते हैं। लेकिन जब हम सम्भाषा परिषद् की बात करते हैं तो वहाँ हजारों सैंकड़ों लोग आकर अपनी बात कहते हैं। जो बहुत बड़े-बड़े विद्वान् हैं वो लोग आकर अपनी बात कहते हैं। तो हमें वह बात जानने-सुनने का अवसर मिलता है।

जो ज्ञान पढ़ा नहीं गया हमारे पास उपलब्ध नहीं है। तो मनुष्य ने अपने स्तर पर बहुत से ग्रन्थों का अवलोकन किया हुआ होता है, परीक्षण किया होता है, बहुतों की चर्चा को सुना हुआ होता है, उसके पास अपनी तरह के ज्ञान का एक संग्रह होता है। जब वह दूसरे व्यक्ति के साथ चर्चा करता है तो उसकी वह जो समस्त सामग्री है वो हमें बहुत अनायास रूप में प्राप्त हो जाती है। इसलिए आचार्य चरक कहते हैं कि किसी भी मनुष्य को यदि ज्ञान के प्रति इच्छा है तो उसे तद् विद्या संभाषा परिषदों में भाग लेना चाहिए। उस विषय के जो विशेष जानकार हैं उनके साथ बैठने, उनकी बातें सुनने से, उनके परस्पर के संवाद सुनने से हमें ज्ञान होता है। दूसरी इसमें सबसे बड़ी बात होती है कि अलग-अलग शास्त्रों के बिना हमारा ज्ञान पूर्ण नहीं होता। आचार्य सुश्रुत एक जगह कहते हैं- एकशास्त्रम् अधीयान: न विद्यात् शास्त्रनिश्चय:। तस्मात् बहुश्रुत शास्त्र विजानीयात् चिकित्सक:। वहाँ चिकित्सक के लिए उन्होंने कहा है कि अपने ही एक ग्रन्थ को पढ़कर के सारी योग्यताओं को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए जहाँ अपने ग्रन्थों का पढ़ना चाहिए वहाँ दूसरे ग्रन्थों को, भिन्न ग्रन्थों को भी पढ़ना चाहिए। भर्तृहरि ने अपने ग्रन्थ 'वाक्यपदीयम्' इस बात को कहते हुए लिखा है 'किं वा शवय मुन्येतुम् स्व पथम् अनुधावता' एक आदमी केवल अपने ही रास्ते को जानता है और दूसरे के रास्ते का महत्त्व पता नहीं है तो वह अपने रास्ते की अच्छी तरह से जान समझ नहीं सकता। इसलिए जो व्यक्ति कुछ कह सकता है वह वही व्यक्ति अच्छी तरह कह सकता है जो अपने शास्त्र के साथ-साथ दूसरे शास्त्र को भी जानता हो, विरोधी शास्त्र को भी जानता हो केवल अपनी ही बात समझना, अपनी ही सुनना अपनी ही बात करना, इतने से मनुष्य कितनी सफला प्राप्त कर सकता

है? यह पर्याप्त नहीं है। इसके लिए हमें दूसरे लोगों की बात भी दूसरे विषयों की बात भी, दूसरे शास्त्रों की बात भ सुननी, समझनी चाहिए। इससे हमारे ज्ञान में स्पष्टता आती है, हमारे ज्ञान में जो श्रेष्ठता है, उच्चता है वह प्राप्त होती है। आचार्य चरक इसके लिए बहुत सुन्दर एक बात लिखते हैं-वे लिखते हैं कि यह सारा संसार ज्ञान का एक साधन है। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसमें से आपको कोई जानकारी न मिलती हो, कुछ उपलब्धि, कुछ प्राप्ति न होती हो। इस संसार में जितना विज्ञान है, जितना आविष्कार है, खोज है, उसमें कुछ भी नया नहीं है। केवल नयापन इतना है, जो चीज हमारी आँखों से ओझल थी, जिस नियम को हम भूल गए थे, या जो नियम हमारे देखने-समझने में नहीं आता था उसको जब विद्वान् हमारे सामने रखता है तो हमें लगता है कि यह खोज है, नया विज्ञान है, आविष्कार है। किन्तु संसार में सब कुछ पहले से ही है। कुछ भी ऐसा नहीं है जो इसमें नया हो। आचार्य चरक की एक बहुत सुन्दर पंक्ति है- कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमताम् आचार्यः शत्रुश्च अ-बुद्धिमताम्। इस दुनिया में दो तरह के लोग हैं- एक वो जो बुद्धिमान्, समझदार कहलाते हैं कुछ लोग हैं जो समझ नहीं पाते हैं, अन्यथा ही समझ लेते हैं या गलत ही समझ लेते हैं। इसकी एक कसौटी है- मनुष्य गलती कर कर भी यह प्रसन्न होता है कि चलो एक नयी बात सीखने को मिली, एक नया अनुभव आया, अगली बार यह गलती हमसे नहीं होगी और एक आदमी गलती से दुःखी होकर निराश हो जाता है और पराजित होकर बैठ जाता है। चरक कहते हैं- कृत्स्नो हि लोको, लोक यहाँ मनुष्यों के लिए भी है और लोक यहाँ समस्त दुनिया के लिए भी है। कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमताम् आचार्यः - यह सारा संसार जो है, सारे संसार के मनुष्य जो हैं, एक बुद्धिमान् व्यक्ति के लिए आचार्य के तुल्य है। जैसे आचार्य से हम कुछ ग्रहण करते हैं, शिक्षा प्राप्त करते हैं, वैसे ही यह सारा संसार हमें कुछ न कुछ शिक्षा देता हुआ दिखाई देता है और 'शत्रुश्च अबुद्धिमताम्' जो मूर्ख है वह हरेक को अपना दुश्मन मानता है, अपना विरोधी मानता है। उससे वह द्वेष करता है, उससे दूरी बनाता है। तो कहा कि संसार में बुद्धिमान् व्यक्ति कभी किसी से दुःखी नहीं होता उसे उसमें भी अपने काम की चीज दिखाई देने लग जाती है। सारा का सारा संसार बुद्धिमानों का आचार्य है और शत्रुश्च अबुद्धिमताम्।

जो यह सारी भूमिका है,यह इस वेद मन्त्र में सार्थक हुई दिखाई देती है। मन्त्र कहता है कि दो तरह के लोग हैं - हर्दा तष्टेषु, मनसो जवेषु। पिछले मन्त्र में एक बात कही गयी थी, कि हमारे ज्ञान की जो भिन्नता है, वो हमारे जो मानसिक संवेग है, हमारी बुद्धि की जो क्षमता है, हमारे मन का जो सामर्थ्य है वो भिन्न-भिन्न है। उसके अलग-अलग होने के कारण से हमारा जो ज्ञान है वो आँख, कान, नाक आदि एक जैसे होने पर भी उसमें अंतर आ रहा है, तो यह अन्तर मनसो जवेषु। तो हर्दा तष्टेषु मनसो जवेषु अर्थात् जो हमारा ज्ञान है जब यह हमारे हृदय में, तष्टा, तष्टा उसे कहते हैं जो बढ़ई लकड़ी की छील करके, काट करके सुन्दर स्वरूप देता है- बढ़िया फर्नीचर, मूर्ति, बढ़िया कोई और वस्तु बनाता है। लेकिन कब बनाता है जब उसे वह 'तष्टा' उसे छीलता है, काटता है, सुन्दर बनाता है। वैसे ही जो मनुष्य है जब इस ज्ञान को अपनी बुद्धि में डालता है और बुद्धि में जब उसका अच्छी तरह से तक्षण कर देता है, उसको माँझ देता है, बढ़िया चमका लेता है। यह कब होता है- यद् ब्राह्मणा संयजन्ते सखायः। हमने देखा था, यज्ञ एक शैली है, एक विधा है, एक मार्ग है जिस पर चल के, जिसका अनुसरण करके कोई भी अच्छी चीज को प्राप्त किया जा सकता है। यह भी ज्ञान यज्ञ है। यज्ञ तो देव पूजा है, संगतिकरण है, अर्थात् यज्ञ मिलकर बैठने का नाम है, यज्ञ एक सामूहिक कार्य है, परस्पर मिलकर करने वाली बात है। तो यहाँ पर ज्ञान के लिए एक बात कह रहा है- ज्ञान यदि यज्ञ है, इस ज्ञान यज्ञ के लिए

यज्ञ तो करना ही पड़ेगा- संयजन्ते संखाय: जो मित्र लोग है, जो विद्वान् लोग हैं, जो बुद्धिमान् लोग हैं वो संयजन्ते, जब यज्ञ पर बैठ जाते हैं, संवाद पर बैठ जाते हैं। शास्त्रार्थ पर बैठ जाते हैं तो हमको जो प्राप्ति होती है, उसके लिए एक पंक्ति दी है - ऊह ब्रह्माणो विचरन्त्युत्वे। कि ऊह ब्रह्म में, वेद ब्रह्म में हमारा विचरण होने लगता है। अर्थात् हम यज्ञ के द्वारा, ज्ञान यज्ञ के द्वारा, संवाद के द्वारा, एक-दूसरे से विचार-विमर्श के द्वारा जब अपने ज्ञान को परिष्कृत कर लेते हैं, तो हमारा ज्ञान पराकाष्ठा की ओर जाने लगता है औ ऊह ब्रह्म में हम विचरण करते हैं। ऊह ब्रह्म, हमारा साक्षात् ज्ञान जो हमारा परमेश्वर प्रदत्त ज्ञान है, जो वेद का ज्ञान है, वो हमारे सामने आने लगता है। यहाँ एक और बात कही है - अत्राह त्वं विज हुर्वेद्याभि: कहता है कि यहाँ जाकर के यह संसार के जो सारे लोग हैं ना, दो भागों में बँट जाते हैं। एक तो, जो इसको समझ पाते हैं और एक वे जो इसको समझने में असमर्थ रहते हैं। जो समझने में असमर्थ रहते हैं वो उनसे भिन्न, अलग हो जाते हैं, परे हट जाते हैं। तो इस संसार में ज्ञानवान लोग और इस संसार में न जानने वाले लोग दो भागों में विभक्त हैं। चर्चा कौन कर सकता है? एक-दूसरे के ज्ञान को ग्रहण कौन कर सकता है? संवाद कौन कर सकता है? जो मनो जवेषु, जिन्होंने मानसिक दृष्टि से, अपने सामर्थ्य से प्राप्त किया है और हर्दा तष्टेषु जिन्होंने ज्ञान का मनन-चिन्तन किया है। जैसा पहले चर्चा की थी -श्रवण- मनन - निधिध्यासन- साक्षात्कार के बिना कोई ज्ञान सम्पूर्ण नहीं होता, उपयोग में नहीं आता है। इसलिए इस मन्त्र में जो चर्चा की गयी है, वो दो भागों को अलग-अलग बाँटते हुए, यदि आपने ज्ञान प्राप्त किया है तो उसको हर्दा तष्टेषु, जब तक हम उसको अपना नहीं बना लेते, वो ज्ञान हमारा नहीं हो जाता। हमारा तब होता है जक उसमें काँट-छाँट हो जाती है, उसमें अनुकूलता बन जाती है हम उसे दूसरे ज्ञान से मिश्रित कर लेते हैं, प्रभावित, पुष्ट कर लेते हैं, तब वह ज्ञान हमारा बन जाता है।

तो इस तरह से यह मन्त्र कह रहा है कि ज्ञान रूप यज्ञ यदि आप करेंगे तो आपका ज्ञान स्पष्ट भी होगा, सुन्दर भी होगा और उपयोगी भी होगा।

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों से निवेदन

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान अजमेर में आने वाले सज्जनों के निवास-भोजन की व्यवस्था की जाती है। यह व्यवस्था ठीक से चल सके, इसके लिए आप अतिथियों के सहयोग की अपेक्षा है। जो भी अतिथि यहाँ कम या अधिक दिन रुकना चाहें तो आने के कम से कम दो दिन पूर्व परोपकारिणी सभा या ऋषि उद्यान के कार्यालय में सूचना देकर स्वीकृति अवश्य प्राप्त कर लेवें। सूचना में अपना नाम, पता, दूरभाष व साथ में आने वाले व्यक्तियों की संख्या, उनकी अवस्था (आयु), स्त्री या पुरुष सहित बता देवें। शौचालय की सुविधा भारतीय या पाश्चात्त्य अपेक्षित है? आपके यहाँ पहुँचने व प्रस्थान का दिन और समय तथा भोजन ग्रहण करेंगे या नहीं, यह भी स्पष्टता से बता देवें। आधार कार्ड की छाया प्रति साथ लाएं। यह सब लिखकर व्हाट्सएप पर भेज देंगे तो श्रेष्ठ है।

आपकी सूचनाओं के होने पर आपके लिए व्यवस्था समुचित की जा सकेगी। अचानक बिना सूचना के आने पर होने वाली असुविधा व कष्ट से आप बच सकेंगे। साथ ही इससे यहाँ के कार्यकर्त्ताओं को भी अनावश्यक असुविधा से बचाने में सहायता होगी। आशा है आपका समुचित सहयोग मिल सकेगा। **सूचना हेतु सम्पर्क**-

ऋषि उद्यान कार्यालय - ०१४५-२९४८६९८ **परोपकारिणी सभा कार्यालय** - ०१४५-२४६०१६४

व्हाट्सएप - ८८९०३१६९६१ **सम्पर्क का समय** - ११ से ४ बजे तक

(किसी एक सम्पर्क पर सूचना देना पर्याप्त रहेगा) **निवेदक - मन्त्री**

ऋषि दयानन्द की प्रथम जन्म शताब्दी (मथुरा १९२५ ई.) का संक्षिप्त विवरण, सन्देश और सम्भावनाएँ

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

ऋषि दयानन्द का जन्म १८८१ वि. सं. में फाल्गुन बदि दशमी (दाक्षिणात्यों के अनुसार माघ बदि दशमी) दिन - शनिवार तदनुसार १२ फरवरी १८२५ ईस्वी को हुआ था। उनकी प्रथम जन्म शताब्दी उनकी शिक्षा-नगरी मथुरा में एक सप्ताह तक फाल्गुन बदि सप्तमी से त्रयोदशी तक १९८१ विक्रम संवत् में मनाई गई। अंग्रेजी दिनांक के अनुसार १५ फरवरी से २१ फरवरी को शिवरात्रि थी। समारोह के पश्चात् सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ने 'श्रीमद् जन्मशताब्दी वृत्तान्त' शीर्षक से २६६ पृष्ठों [१२+२४४+क-ञ] की एक स्मारिका प्रकाशित की गई, जिसका शीर्षक उक्त नाम से ही था, 'स्मारिका' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया था। 'जन्म शताब्दी वृत्तान्त' की सम्पूर्ण सामग्री का संग्रह तथा सम्पादन सार्वदेशिक सभा के विद्वान् मन्त्री डॉ. केशवदेव शास्त्री एम.डी. ने किया था। मूल्य सवा एक रुपया था। इसका मुद्रण स्वामी श्रद्धानन्द के सुपुत्र पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति के सौजन्य से 'अर्जुन प्रेस, नया बाजार देहली में हुआ था।' इस 'स्मारिका' वा 'जन्मशताब्दी वृत्तान्त' की एक दुर्लभ प्रति मेरे पास है। मैंने इसकी फोटो प्रति 'आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली' के महामन्त्री श्री विनय आर्य जी को इस आशा से उपलब्ध कराई थी कि वे इसका प्रकाशन ऋषिवर की द्वितीय जनशताब्दी के अवसर पर कर देंगे, जिससे आर्य जनता को प्रथम जन्मशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित महत्त्वपूर्ण सामग्री से अवगत कराया जा सके। साथ ही आर्यों को यह भी विदित हो जाएगा, कि किस प्रकार प्रथम जन्मशताब्दी मनाई गई थी? किन्तु यह प्रकाश में नहीं आ पाई। अत: मैं इस लेख के माध्यम से 'जन्म शताब्दी वृत्तान्त' की महत्त्वपूर्ण सूचनाओं तथा ऐतिहासिक सामग्री से पाठकों को अवगत कराना चाहता हूँ।

भूमिका

प्रारम्भ में बारह पृष्ठों की भूमिका है। 'भूमिका' में उल्लिखित सामग्री में इस बात का विवरण है कि मथुरा में ही ऋषि की जन्मशताब्दी क्यों मनाई गई? जन्म शताब्दी की तिथियों का निर्धारण कैसे किया गया? इन तिथियों में शिवरात्रि को रखने का क्या औचित्य था? सबसे महत्त्वपूर्ण बात १९२५ ई. (१८२५ ई.) की शिवरात्रि को महोत्सव में सम्मिलित करना था। 'भूमिका' में स्पष्ट लिखा गया है - 'भगवान् दयानन्द सरस्वती का जन्म काठियावाड़ अन्तर्गत मौरवी राज्य के टंकारा नामी ग्राम में १८२५ ईसवी में हुआ था। शिवरात्रि १८२५ में जन्मशताब्दी का दिवस निर्धारित किया गया।' (पृष्ठ-३)। 'भूमिका' के पश्चात् पुस्तक की मुख्य सामग्री प्रथम परिच्छेद से प्रारम्भ होती है। प्रथम परिच्छेद के आरम्भिक पृष्ठ एक पर भी यह लिखा है - 'श्रीमद्दयानन्दर्षि के जन्म को विक्रम संवत् १९८१ या सन् १९२५ ई. में १०० वर्ष होने वाले थे।' (पृष्ठ-१)

१९१२ ई. के 'आर्यमित्र' के ऋषि-अंक में बाबू मदनमोहन सेठ ने सर्वप्रथम यह प्रस्ताव रखा था कि ऋषि दयानन्द की जन्म शताब्दी महोत्सव मनाया जावे। इस प्रस्ताव के आलोक में २ तथा ३ सितम्बर १९२० ई. को भारत की राजधानी दिल्ली में सार्वदेशिक सभा तथा परोपकारिणी सभा के संयुक्त विज्ञापन के अनुसार बृहत् सभा आहूत की गई, जिसमें आर्यसमाजों के प्रतिनिधि बहुसंख्या में सम्मिलित हुए। इस सभा में निम्नांकित निश्चय किये गये-

१. जन्म शताब्दी १९८१ विक्रमी में शिवरात्रि के अवसर पर मनाई जाए।

२. परोपकारिणी सभा इस अवसर पर ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य तथा वेदांग प्रकाश को छोड़कर ऋषिवर का समस्त साहित्य शताब्दी संस्करण प्रकाशित करे। पुस्तकों का संशोधन ऋषि की हस्तलिखित कापियों से मिलान करके किया जाए। इसे लागत मूल्य पर बेचा जाए। [ज्ञातव्य है कि परोपकारिणी सभा ने इस निश्चय के अनुसार ऋषि के ग्रन्थों को शताब्दी संस्करण नाम से छापा। आर्यसमाज के पूर्व विद्वानों ने अपनी पुस्तकों तथा शोध लेखों में ऋषि के ग्रन्थों से पाठ उद्धृत करने में शताब्दी संस्करण का उपयोग किया है- लेखक]

३. जन्मभूमि टंकारा तथा निर्वाण भूमि अजमेर में एक-एक स्तूप बनाया जावे, जिस पर आर्यसमाज के नियम, जन्मतिथि और आर्यसमाज की मुख्य-मुख्य ऐतिहासिक घटनाओं का तिथि सहित उल्लेख किया जावे। [इस निश्चय को कार्यरूप नहीं दिया गया। विद्वान् मन्त्री डॉ. केशव देव शास्त्री ने इसका कारण बताते हुए यह लिखा है- 'तीसरे प्रस्ताव का आर्यसमाजों ने मूर्त्तिपूजा फैलने के भय से आमतौर से विरोध किया। इसलिए यह प्रस्ताव शिथिल सा समझ लिया गया और इस सम्बन्ध में कुछ कार्य नहीं किया गया'- ज्वलन्त शास्त्री]

४. शताब्दी महोत्सव के प्रबन्ध के लिए एक शताब्दी सभा बनाई जाए, जिसमें सार्वदेशिक सभा तथा परोपकारिणी सभा के सभी सदस्य, प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सात सदस्य, भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् के दो सदस्य, सात संन्यासी, सात देवियाँ तथा आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के प्रधान सम्मिलित किये जाएँ। [तदनुसार ही शताब्दी सभा गठित की गई। ज्ञातव्य है कि उस समय तक सार्वदेशिक सभा में आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब सम्मिलित नहीं थी। प्रादेशिक सभा के स्थान में पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा सार्वदेशिक सभा के अन्तर्गत थी। प्रादेशिक सभा में 'महात्मा हंसराज' तथा पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा में 'स्वामी श्रद्धानन्द' का वर्चस्व था। ऋषिवर की जन्म शताब्दी में सभी पक्षों का प्रतिनिधित्व हो, एतदर्थ यह सुन्दर निर्णय लिया गया तथा इस निर्णय में स्वामी श्रद्धानन्द जी की भी पूर्ण सहमति थी- ज्वलन्त शास्त्री]

पुस्तक के 'द्वितीय परिच्छेद' में जन्मशताब्दी सभा का निर्माण का विवरण दिया गया है। गुरुकुल वृन्दावन के महोत्सव दिसम्बर १९२२ई. में जन्म शताब्दी सभा का निर्माण हो गया। इस सभा के प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार रही-

सार्वदेशिक सभा के सदस्य	२७ सदस्य
परोपकारिणी सभा के सदस्य	२३ सदस्य
प्रादेशिक सभा पंजाब के सदस्य	०७ सदस्य
संन्यासी सदस्य	०७ सदस्य
देवियाँ सदस्य	०७ सदस्य
अन्य प्रतिष्ठित सदस्य, जो इस सभा में बढ़ाये गये	१४ सदस्य
प्रधान संयुक्त प्रान्त	०७ सदस्य
कुल-	**८६ सदस्य**

इस प्रकार ८६ सदस्यों की शताब्दी सभा निर्मित हो गई। कोरम ०७ का रहा। इसी सभा में अधिकारियों का चुनाव हुआ, जिसका विवरण इस प्रकार है-

१. स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी	- प्रधान
२. महात्मा नारायण स्वामी	- उपप्रधान
३. महात्मा हंसराज - (लाहौर)	- उपप्रधान
४. डॉ. कल्याणदास देसाई (मुम्बई)	- उपप्रधान
५. श्री हरविलास जी शारदा (अजमेर)	- उपप्रधान
६. सेठ जयनारायण जी (कलकत्ता)	- उपप्रधान
७. बाबू सीताराम जी बी.ए. (लखमीपुर)	- मन्त्री
८. बाबू मदनमोहन सेठ एम.ए. एल.एल.बी. (M.R.A.S.)	- उपमन्त्री
९. बाबू श्रीराम जी (आगरा)	- कोषाध्यक्ष

जुलाई १९२३ ई. में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने प्रधान

पद से त्यागपत्र दे दिया। शताब्दी सभा ने उनसे प्रार्थना की कि व अपना नाम प्रधान पद के साथ सभा में रहने दें और निश्चय किया गया कि महात्मा नारायण स्वामी कार्यकर्त्ता प्रधान के तौर पर शताब्दी सभा का समस्त कार्य करें। तदनुसार पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी ने अपने महनीय व्यक्तित्व के अनुरूप अपूर्व कौशल तथा प्रबन्ध-पटुता का जो उदाहरण प्रस्तुत किया वह बेमिसाल है।

सम्माननीय मन्त्री जी तथा उपमन्त्री भी कार्यालय से दूर रहने के कारण अपने-अपने पदों का कार्य न कर सके। किन्तु सभा ने इनके नामों को पृथक् न करके स्वामी सच्चिदानन्द जी से मन्त्री तथा बाबू गजाधरप्रसाद जी से उपमन्त्री का कार्य लिया। शताब्दी सभा ने अपने सदस्यों में से ३६ सदस्यों की एक कार्यकारिणी सभा भी बनाई और उसे समस्त अधिकार सौंप दिये। कोरम ५ का नियत किया जिससे आवश्यकतानुसार सुगमता से बैठकें की जा सकें। तदनुकूल महात्मा नारायण स्वामी के नेतृत्व में ऋषिवर दयानन्द की जन्मशताब्दी इस प्रकार मनाई गई जिसका नाम और यश तथा प्रभाव भी अगली शताब्दियों के लिए आदर्श बना रहेगा।

पुस्तक के 'तृतीय परिच्छेद' में शताब्दी कार्यालय द्वारा निर्गत २० बुलेटिन्स या पत्रिकाओं का विवरण है, जिनमें शताब्दी सभा के निश्चयों तथा आर्यों तथा आर्यसमाजों के कर्त्तव्यों को बताया गया है। इन बुलेटिन्स के अनुसार सभी कार्य सम्पादित किये गये। जो कार्य नहीं किये जा सके उस पर भी यह 'स्मारिका' प्रकाश डालती है। अब हम इन बुलेटिनों की चर्चा करेंगे, जिनसे महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ तथा किये जाने वाले कार्यों की जानकारी मिलती हैं। साथ ही आर्यजनों की समस्यायें तथा भविष्य में भी क्रियमाण कार्यों की झलक हम इन बुलेटिनों में पाते हैं। पहली बुलेटिन १ जनवरी १९२३ ई. को जारी की गई। इसमें दिल्ली सभा में किये गये निश्चय प्रकाशित किये गये, जिसका हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त विद्वानों की एक सभा बनाई गई जिसके जिम्मे निम्नलिखित कार्य सौंपे गये-

१. आर्यसमाज के मन्दिरों तथा यज्ञवेदियों का एक मॉडल तैयार किया जाए, जिसके अनुसार आर्यसमाजें अपने मन्दिर तथा यज्ञशालाएँ बनवायें। [तदनुसार शताब्दी सभा ने सुप्रसिद्ध इञ्जीनियरों से भिन्न-भिन्न नक्शे बनवा कर एक सर्वमान्य नक्शा तैयार करवाया और उसे सार्वदेशिक सभा को सौंप दिया।]

२. आर्यसमाजों में पर्व और त्यौहार कैसे मनाया जाए, किन पर्वों को तथा किस रीति से उन्हें मनाया जाए?

३. यह भी निर्देश दिया गया त्यौहार सब मिलकर मनावें तथा परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर पिछले झगड़ों को आपस में क्षमा कर भूल जाया करें।

[शताब्दी सभा की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में एक यही रही कि विद्वानों की सभा से अनुमति प्राप्त कर बिजनौर के हल्दौर निवासी श्री पं. भवानीप्रसाद ने एक पर्व पद्धति तैयार की और उसे शताब्दी समारोह के पूर्व- माघ कृष्ण- ३०, १९८१ वि. को महात्मा नारायण स्वामी की भूमिका के साथ प्रकाशित कर दिया गया। तब से आज तक देश-विदेश की सभी आर्यसमाजें इसी 'आर्य पर्व पद्धति' के अनुसार पर्वकृत्यों को सम्पादित करती हैं - लेखक]

४. कुछेक वेदमन्त्रों का संकलन कर छपवाया जाए जिसे आर्यसमाजें अपने साप्ताहिक अधिवेशनों में स्वरसहित गा सकें।

[तदनुसार ऋग्वेद के अन्तिम संज्ञान सूक्त (१०/१९१) के मन्त्रों का पाठ निर्धारित किया गया। आर्यसमाजों ने अपनी पद्धति में 'संज्ञान सूक्त' का नाम बदलकर 'संगठन सूक्त' कर दिया। शायद ही किसी संगठन में इतनी बार संगठन सूक्त का पाठ किया जाता हो। पुनरपि दो दशाब्दियों से सार्वदेशिक तथा प्रान्तीय सभाओं के मुकदमे न्यायालय में चल रहे हैं!! क्या भूमण्डल भर में

दो–तीन आर्य संन्यासी या आर्यविद्वान् ऐसे नहीं बचे हैं जो निष्पक्ष होकर इनके झगड़ों को निपटारा कर सकें!!! लाखों–करोड़ों रुपये न्यायालयों में फूँककर ऋषि दयानन्द के स्वप्नों का आर्यसमाज कैसे बनाया जा सकता है? – लेखक]

५. आर्यसमाजों के उत्सवादि में बोलने के लिए 'जयनाद' और 'हर्षनाद' निश्चित किया जाए।

[आज जिसे 'जयघोष' या 'नारा' बोला जाता है उस समय उसे जयनाद कहा जाता था। 'जयनाद' के लिए 'वैदिक धर्म की जय' नियत किया गया। हर्षनाद के लिए 'ओं खं ब्रह्म' तथा 'ओं तत् सत्' ये दो वाक्य उपस्थित किये गये। किन्तु 'सभा' इनमें से कोई भी हर्षनाद नहीं निश्चित कर सकी।]

['हर्षनाद' का अब कोई प्रश्न ही नहीं रहा। 'जयनाद' 'जयघोष' में बदल गया और अब उसकी कोई निश्चित संख्या नहीं है– लेखक]

६. एक 'आर्य स्मृति' तैयार की जाए जिसे आर्यसमाजें मान्यता दें।

['स्मृति संग्रह' तैयार किया गया किन्तु इस विषय में आर्यविद्वानों में भारी मतभेद था। उसे दूर करना समयाभाव के कारण सम्भव नहीं हो पाया। इस सम्बन्ध में महात्मा नारायण स्वामी ने अपनी 'आत्मकथा' में लघु चर्चा की है। (द्रष्टव्य– आत्मकथा, पृ. १०४, सम्पादक– डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, प्रकाशक– हितकारी प्रकाशन समिति, हिण्डौन सिटी (राज.) वर्ष २०२० ई.।) उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इसी सन्दर्भ को ध्यान में रखकर आर्यसमाज के प्रख्यात लेखक और आर्यमनीषी पं. श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय ने अनुष्टुप् श्लोकों में एक 'आर्यस्मृतिः' ग्रन्थ लिखकर बाद में प्रकाशित किया। इसका पुनः प्रकाशन अपेक्षित है। जन्मशताब्दी ने इस प्रकार एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को लिखने तथा प्रकाशित करने की प्रेरणा दी। –लेखक]

सब का हो उत्थान

– **डॉ. रामवीर**

या तो लोग बहुत निर्धन हैं
या हैं बहुत धनवान
क्या कारण है मनुज मनुज से
है इतना असमान।

पाप पुण्य भी होते होंगे
कर्मों का भी स्थान
किन्तु इससे ही नहीं होते
निर्धन या धनवान्।

घोर असमानता का हेतु नहीं
हो सकता भगवान्
लगता है इसका कारण तो
खुद ही है इन्सान।

इन्सानों में जो होते हैं
स्याने और सुजान
वे केवल अपने ही हित के
रचते रहते विधान।

तुम कहते हो अपने ही श्रम
से तुम बने महान्
हम कहते हैं अन्यों के श्रम
का भी है योगदान।

सत्पुरुषों की यही जगत् में
होती है पहचान
अगर पड़ोसी भूखा हो तो
वे न करें जलपान।

सबको अवसर मिले काम का
सबका हो सम्मान
सब सम्पन्न और सुखी होवें
सब का हो उत्थान।

86, सैक्टर 46, फरीदाबाद (हरि.) चल. 9911268186

(परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित)

योग-ध्यान स्वाध्याय शिविर

संवत् २०८१, ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी से दशमी तक, तदनुसार १० से १६ जून २०२४

इस योग-साधना शिविर में योग सम्बन्धी विषयों का वैदिक-दर्शनों के द्वारा ज्ञान करवाया जायेगा, उससे सम्बन्धित जिज्ञासाओं का समाधान व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी उन्नति का मापदण्ड बताया जायेगा। यह शिविर अवश्य ही आपकी साधना की उन्नति में विशेष साधन बनेगा, जिससे कि मानव जीवन के मुख्य व चरम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तरोत्तर काल में आप अपने निकट अनुभव करने लगेंगे।

प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक शिविरार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।

२. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य-सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।

३. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।

४. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि-उद्यान परिसर में ही की जायेगी।

५. बाह्य-वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे- समाचार-पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखने आदि पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।

६. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।

७. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन-सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।

८. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

९. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ- परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) कार्यालय से (०१४५-२९४८६९८, मो. ८८९०३१६९६१, ८८२४१४७०७४, ९९१११९७०७३) से सम्पर्क कर शिविर से पूर्व शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता-बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्-पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार अतिरिक्त भुगतान से की जाती है। ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं, शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने-ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक), लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गम्भीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। लौटने का रेल-आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने-पीने की वस्तुएँ साथ न लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क २००० रु. मात्र जमा करना होगा। पृथक् कक्ष का शुल्क २००० रु. अतिरिक्त देय है। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर के प्रारम्भ दिनांक से एक दिन पहले सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर में पहुँच जाना आवश्यक है, क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर **दूरभाष :** ०१४५-२९४८६९८,
मो.नं. ८८९०३१६९६१, ८८२४१४७०७४, ९९१११९७०७३

– : मार्ग : –

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेलवे स्टेशन व बस स्टेण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

आर्यवीर एवं आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर

स्थान - ऋषि उद्यान, अजमेर, राजस्थान

आर्य वीर दल आवासीय शिविर - दिनांक - २६ मई से ०१ जून २०२४ तक

आर्य वीरांगना दल आवासीय शिविर - दिनांक - ०२ जून से ०८ जून २०२४ तक

नमस्ते जी। आप सभी को सूचित किया जाता है कि आर्य वीर व आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर ऋषि उद्यान अजमेर में आयोजित किया जाएगा ।

शिविर की विशेषता - १. शिविर आर्यवीर दल अजमेर एवं परोपकारिणी सभा अजमेर के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित होगा । इसमें राष्ट्रीय स्तर के शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाएगा।

२. शिविर में सहयोग राशि ८००/- रुपये रहेगी।

३. सभी को गणवेश में रहना अनिवार्य होगा । गणवेश यदि उपलब्ध नहीं है तो शिविर स्थल से क्रय कर सकते हैं।

४. इस शिविर में सैनिक शिक्षा का विशेष प्रशिक्षण होगा।

५. आर्य वीर शिविर स्थल पर २६ मई २०२४ व आर्य वीरांगना शिविर में ०२ जून २०२४ को सायंकाल ५ बजे तक आना अनिवार्य है।

६. शिविर में भाग लेने वाले आर्य वीर अपनी आने की सूचना **श्री नन्दकिशोर आर्य** के चलभाष-९३१४३९४४२१, **श्री कमलेश पुरोहित** को चलभाष संख्या ९८२८१८०१९७ व **श्री वासुदेव आर्य**-चलभाष संख्या ९४६०११२०९२ एवं आर्य वीरांगना की सूचना **श्रीमती सुलक्षणा शर्मा** को चलभाष संख्या ९४१३६९५४८९, **श्रीमती कुमुदिनी आर्या**-चलभाष संख्या ९८२८१८०१९७ पर अवश्य देवें । धन्यवाद ।

विश्वास पारीक-जिला संचालक-९४६००१६५९०

आर्य वीर दल एवं आर्य वीरांगना दल अजमेर

परोपकारिणी सभा, अजमेर

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
ऋग्वेद संहिता	९००	५००	४००
अथर्ववेद संहिता	५५०	४००	३००
ऋग्वेद भाष्य नवम भाग	४००	३००	२२५
पञ्चमहायज्ञ विधि	६२	२०	१५
वैदिक संध्या मीमांसा	१०७	४०	३०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-
डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु
खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)
बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।
बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-
0008000100067176
IFSC - PUNB0000800
UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

आवश्यक सूचना

परोपकारी के सुधि पाठकों से निवेदन है कि कृपया अपना नाम व पते के साथ दूरभाष संख्या भी अंकित करावें ताकि परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रमों से सम्बन्धित सूचनाएँ आपको दूरभाष पर मैसेज के माध्यम से भेजी जा सकें।

परोपकारिणी सभा दूरभाष संख्या - ८८९०३१६९६१

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है।

दूरभाष - **8890316961**

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष** - 8890316961

दानदाताओं की सूची

अन्य प्रकल्पों में सहयोग

(०१ से ३० मार्च २०२४ तक)

१. श्री सतीश कुमार आर्य, मुजफ्फरनगर २. श्री विपिन कुमार, दिल्ली ३. श्री मनीष माहेश्वरी, किशनगढ़ ४. श्रीमती ममता माहेश्वरी, किशनगढ़ ५. श्री दिलीप सिंह डीडवाना, अजमेर ६. श्री कपिल, अजमेर ७. आचार्य सत्यव्रत, अजमेर ८. श्रीमती विजयलक्ष्मी चौधरी, जोधपुर ९. श्रीमती रमा सुभाषचन्द नवाल, अजमेर १०. श्री के. सी. शर्मा, अजमेर ११. श्रीमती रश्मि पारवानी, अजमेर १२. मै. कस्तूरबा गांधी बालिका आवासीय विद्यालय, नागौर १३. श्री वेदप्रकाश हिंडौन १४. श्री सौरभ कुमार सिंह, मुम्बई १५. स्वामी आशुतोष, अजमेर १६. श्रीमती तुलिका साहू, विलासपुर १७. मै. आर्यसमाज दयानन्द भवन, नागपुर १८. श्री सुरेश आनन्द, नई दिल्ली १९. श्री चन्द्रसेन हरिसिंघानी, अहमदाबाद २०. श्रीमती चन्द्रकान्ता टूटेजा, गुरुग्राम २१. श्री तिलकराज नागपाल, गुरुग्राम २२. श्री अनिल सचदेवा, गुरुग्राम २३. श्री धर्मदेव शशि नागपाल, गुरुग्राम २४. श्रीमती कान्ता चौधरी, गुरुग्राम २५. श्रीमती किरण देवी, जोधपुर २६. श्री जयसिंह गहलोत, जोधपुर २७. श्री राकेश, जोधपुर २८. श्रीमती हेमलता परासीया, मुम्बई २९. श्रीमती दीक्षा, मुम्बई ३०. श्रीमती भारती, मुम्बई ३१. श्री जावीर, मुम्बई ३२. श्रीमती उर्मिला, मुम्बई ३३. श्रीमती अंजना पटेल, मुम्बई ३४. श्रीमती अमीषा, मुम्बई ३५. श्रीमती जयाबेन पटेल, मुम्बई ३६. श्रीमती भावना, मुम्बई ३७. श्रीमती मन्जू, मुम्बई ३८. श्रीमती दीपिका, मुम्बई ३९. श्रीमती लता देवानी, मुम्बई ४०. श्रीमती शिल्पा कानपारा, मुम्बई ४१. श्रीमती वन्दना विज, मुम्बई ४२. श्रीमती तरुलता वेलानी, मुम्बई ४३. श्रीमती शारदा चौधरी, मुम्बई ४४. श्रीमती मयूरी भवानी, मुम्बई ४५. श्रीमती लीलावती नाकरानी, मुम्बई ४६. श्रीमती दमयन्ती, सेनघानी, मुम्बई ४७. श्रीमती उषा सिंह, मुम्बई ४८. श्रीमती मन्जु खण्डेलवाल, मुम्बई ४९. श्री कमलेश डूड, गुड़गाँव ५०. श्रीमती हेमलता पटेल, मुम्बई ५१. श्रीमती जया वेलानी, मुम्बई ५२. श्रीमती हर्षिता वेलानी, मुम्बई ५३. श्रीमती सुमना गुप्ता, मुम्बई ५४. श्री जयन्तीलाल पोकर, मुम्बई ५५. श्री विनोद वेलानी, मुम्बई ५६. श्री परेश पटेल, मुम्बई ५७. श्रीमती अरुणा बेन, मुम्बई ५८. मै. सुप्रीम सन्राइजर्स, गेगल, अजमेर ५९. स्वामी मुमुक्षानन्द, अजमेर

प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में सञ्चालित आर्ष गुरुकुल में प्रवेश प्रारम्भ हैं। वैदिक धर्म के उपदेशक-प्रचारक बनने के इच्छुक युवा प्रवेश हेतु शीघ्र आवेदन करें।

प्रवेश हेतु अविवाहित एवं आठवीं उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। भोजन एवं आवास की निःशुल्क सुविधा है। **सम्पर्क सूत्रः ८८९०३१६९६१**

प्रधान — **९९५०९९९६७९**

मन्त्री — **९९११९७०७३**

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अतः परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष **'सत्यार्थप्रकाश'** के साथ **'महर्षि का जीवन-चरित्र'** एवं **'आर्याभिविनय'** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **५०० से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

---

yono SBI | SBI Payments

MERCHANT NAME : PROPKARNI SABHA
UPI ID : PROPKARNI@SBI

SCAN & PAY

BHIM
SBI Pay
BHIM UPI

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

भावभीनी श्रद्धांजलि

पंडित रामप्रसाद बिस्मिल

11 जून 1897 – 19 दिसम्बर 1927

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाज़ू-ए-क़ातिल में है

पंडित रामप्रसाद बिस्मिल के बिना भारत की आजादी का इतिहास अधूरा है। उन्हें मात्र तीस साल की उम्र में ब्रिटिश सरकार ने फांसी दे दी। बिस्मिल कट्टर आर्य समाजी थे। उन्होंने अपनी आत्म कथा में लिखा है – मैंने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा। इससे तख्ता ही पलट गया। सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया। मैं थोड़े ही दिनों में बड़ा कट्टर आर्य समाजी बन गया।

इस महान् ऋषि भक्त और अमर शहीद को हमारी ओर से भावभीनी श्रद्धांजलि।

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक   प्रेषण : ३०-३१ मई २०२४   आर.एन.आई. ३९५९/५९

अनन्य ईश्वर भक्त, योगेश्वर

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

की

२०० वीं जयन्ती के अवसर पर

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

दिव्य एवं भव्य

अन्तर्राष्ट्रीय ऋषि मेला

१८-२० अक्टूबर २०२४

सादर आमन्त्रण

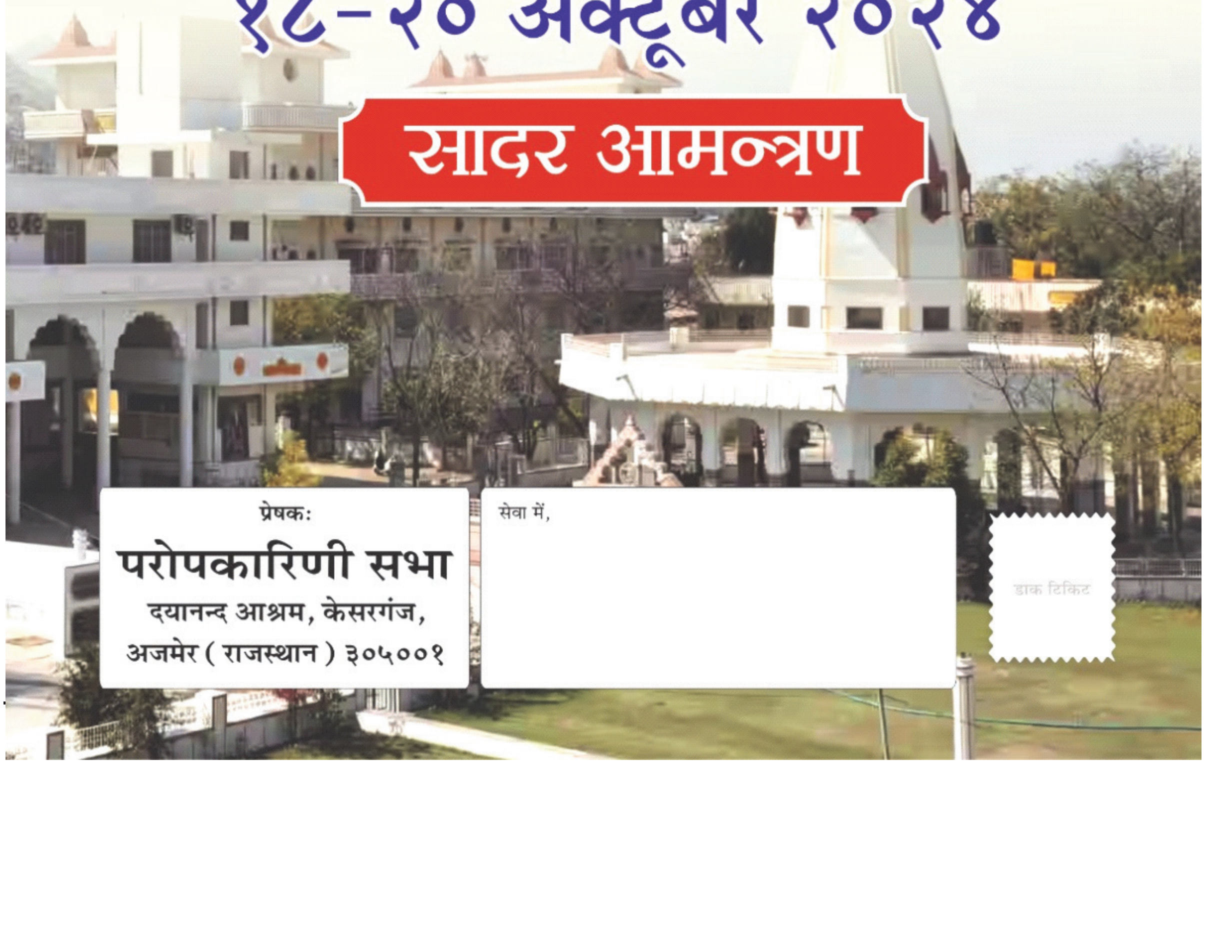

प्रेषक:

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,

अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

डाक टिकट